प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

1. दिल्ली-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ, दिल्ली
2. प्रयाग-ग्रंथागार, ४०, क्रास्थवेट रोड, प्रयाग
3. काशी-ग्रंथागार, मच्छोदरी-पार्क, काशी
4. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
5. साहित्य-रत्न-भंडार, सिविल लाइंस, आगरा
6. हिंदी-भवन, अस्पताल-रोड, लाहौर
7. एन्० एम्० भटनागर ऐंड ब्रादर्स, उदयपुर
8. दक्षिण-भारत-हिंदी-प्रचार-सभा, त्यागरायनगर, मदरास

नोट—हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें। हम उनके वहाँ भी मिलने का प्रबंध करेंगे। हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाइए।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ


-प्रेमोपहार-

दो शब्द

हिंदी के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत कृष्णगोपालजी माथुर द्वारा रचित "किससे क्या सीखें ?" पुस्तक हम हिंदी-प्रेमियों की सेवा में उपस्थित कर रहे हैं। इस पुस्तक में सभी देशों के महापुरुषों के जीवन की कुछ विशेष-विशेष घटनाओं का उल्लेख है। इन उल्लेखों को ध्यान-पूर्वक मनन करने से हमें अपने जीवन में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के अंदर मार्ग-निर्देश करने की जागरूकता मिलेगी।

कभी-कभी जब मनुष्य किसी विशेष स्थिति में पड़कर किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाता है, तब किसी महापुरुष की जीवन-घटना उसे रास्ता बता देती है।

इस संसार में कोई भी व्यक्ति अपने को पूर्ण नहीं कह सकता, तथा अपनी अपूर्णता को दूर करने के लिये उसे जीवन-भर अपने से अधिक विकसित व्यक्तियों या पुस्तकों से कुछ-न-कुछ सीखना पड़ता है। यह पुस्तक सभी पाठकों के लिये उपयोगी है। इसकी शैली भी इतनी मनोरंजक है कि पढ़ते समय पाठक को यह नहीं भास होता कि कोई उपदेश ग्रहण कर रहा है। प्रत्येक व्यक्ति को इस पुस्तक से लाभ उठाना चाहिए।

कवि-कुटीर
लखनऊ, १।१।४७

सावित्री दुलारेलाल

लाइब्रेरी-योजना

गाँव-गाँव और शहर-शहर में

एक लाख घरेलू लाइब्रेरियाँ खुलवाइए !

अन्न-दान से परे कोई दान नहीं, किंतु विद्या-दान उससे भी श्रेष्ठ है। कारण, अन्न से आप मानव को शारीरिक भूख ही शांत करते हैं, किंतु विद्या से उसकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक भूख शांत करते हैं—उसका लोक-परलोक बनाते हैं। शारीरिक भी इसलिये कहा कि पढ़ाकर आप उसे काफ़ी शारीरिक भोजन कमाने लायक़ बनाते हैं। इसलिये शास्त्रों में विद्या-दान को ही सर्वश्रेष्ठ दान बतलाया गया है।

विद्या-दान के मुख्य केंद्र स्कूल, कॉलेज, गुरुकुल और विश्वविद्यालय ही हो रहे हैं। किंतु विद्या-दान का इससे कहीं सुसंस्कृत और सुंदर-स्वरूप लाइब्रेरी-स्थापन है। कारण, स्कूल-कॉलेज में किसी बालक या बालिका को पढ़ाकर आप जहाँ उसी एक को लाभ पहुँचाते हैं, वहाँ लाइब्रेरी खोलकर अपने को, अपने घरवालों को, पड़ोसियों को और जो लाभ उठाना चाहें, उन्हें लाभ पहुँचाते हैं। लाइब्रेरियों में सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिये उपयोगी किताबें रह सकती हैं, इसलिये बालक, युवक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष, सभी समान रूप से उनसे लाभ उठा सकते हैं।

भारत-भर में ४०० से ज़्यादा हिंदी-भाषा-भाषी ज़िले और स्टेट तथा लगभग २,००,००० गाँव अवश्य हैं—हिंदी बोलने-वाले १० करोड़ मनुष्य ज़रूर हैं। क्या इनमें से १ लाख भी हिंदी-पढ़े-लिखे ऐसे नर-नारी, युवक-युवतियाँ नहीं मिल सकते, जो ६००) सालाना या ५०) मासिक से ज़्यादा आमदनी रखते

हों, और वष में ६) या महीने में ।।) अर्थात् एक पैसा रोज़ हिंदी-हित के लिये ख़र्च कर सकें? हमारी राय में अवश्य मिल सकते हैं, और मिलेंगे। आवश्यकता है "ख़ूब हिंदी-पुस्तकें पढ़िए" का भाव हिंदी-भाषा-भाषी भाई-बहनों में जगाने की। मुस्लिम-लीग जगह-जगह उर्दू-लाइब्रेरियाँ खुलवा रही है। हज़ारों लाइब्रेरियाँ खुल चुकी हैं। बँगला, गुजराती, मराठी-भाषी पढ़े-लिखे भाई-बहन शायद ही कोई ऐसे हों, जिनके यहाँ अपनी मातृभाषा के ग्रंथ न हों। तभी तो ये सब साहित्य तेज़ी से तरक़्क़ी कर गए हैं। क्या हमें पीछे रहना चाहिए? कदापि नहीं। तो फिर क्या आप अपने घर में घरेलू पुस्तकालय खोलेंगे? अवश्य एक छोटी, पर अच्छी पुस्तकोंवाली लाइब्रेरी खोलिए। पुस्तकों का चुनाव सावधानी से कीजिए।

नोट—कहना न होगा, इस स्कीम से १० वर्ष में १-२ हज़ार सुंदर ग्रंथ निकल जायँगे, और कई सौ लेखक भी तैयार हो जायँगे। साथ ही लेखक जिस प्रकार इस समय भूखों मर रहे हैं, उनकी वैसी अवस्था न रहेगी। सारा देश भी उन्नत और समृद्धिशाली हो जायगा। यह सब पुण्य आप लूटेंगे। इसलिये फ़ौरन् हमारी लाइब्रेरी-योजना मँगाकर प्रतिज्ञा-पत्र भरकर भेजिए, और अपने मित्रों तथा संबंधियों से भिजवाइए।

दुलारेलाल
(सर्वप्रथम देव-पुरस्कार-विजेता)
सावित्री दुलारेलाल एम्० ए०
(सभानेत्री अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा-परिषद्)

(१)

शिवराम किंकर का ईश्वर पर अचल विश्वास

काशी-धाम में, सन् १९१६ में, श्रीशिवराम किंकर योगत्रयानंद नाम के साधु रहते थे। इस समय यह मौजूद हैं या नहीं, इसका पता नहीं। यह महायोगी और ज्ञानी पुरुष थे। यौवनावस्था में इन ज्ञान-पिपासु भक्त को सर्व शास्त्रों का अभ्यास करने की इच्छा हुई, परंतु पुस्तकें खरीदने के लिये इनके पास पैसे न थे। इनकी स्मरण-शक्ति बहुत तेज थी। यह दूसरों से पुस्तकें माँगकर लाते, और थोड़े ही समय में उन्हें कंठस्थ करके लौटा देते।

एक बार इन्हें पाणिनि का महाभाष्य पढ़ने की बहुत इच्छा हुई। हालत यह थी कि इनके पास जितने पैसे थे, उनसे यदि यह ग्रंथ खरीदते, तो खाने-पीने के लिये कुछ न रहता। अंत में आपने "भगवान् ने दाँत दिए हैं, तो चबेना भी देगा।" ऐसा विचारकर पास के सब पैसों से व्याकरण खरीद लिया, और अभ्यास शुरू कर दिया। खाने-पीने की चिंता आपने बिलकुल नहीं की। नतीजा यह हुआ कि एक दिन आपको और आपके परिवार को उपवास करना पड़ा।

दूसरे दिन इन्हें एक रजिस्टर्ड पत्र मिला। उसमें से एक

१६०।

नोट निकला। महाभाष्य के मूल्य की अपेक्षा इस नोट का मूल्य लगभग तीन गुना अधिक था। पत्र भेजनेवाले ने लिखा था—"मेरे इष्टदेव मुझसे स्वप्न में कह गए हैं कि मेरा भक्त कष्ट भोग रहा है। आपका पता भी उन्हीं ने बताया है। आपके नाम का कोई मनुष्य है या नहीं, यह मैं नहीं जानता। अगर कोई होगा, तो यह पत्र उसी को मिलेगा, और रजिष्ट्री की रसीद मुझे मिलेगी। रसीद मिलते ही मैं उन धन्यम्मन्य पुरुष के चरणारविंदों के दर्शन करने के लिये फ़ौरन् रवाना हो जाऊँगा*।"

---

(२)

डेमियन की निष्काम सेवा और सात्त्विक दया

बेलजियम में रहकर दो भाई एक ही कॉलेज में धर्मगुरु होने का अभ्यास करते थे। बड़ा भाई गुरु (फ़ादर) डेमियन के तौर पर थोड़े ही समय में धर्म-प्रचारक होकर दक्षिण-समुद्र के टापुओं में जानेवाला था। दरिया पर जाकर काम करने

---

* ऐसी बातें प्रायः झूठी बनाकर भी बहुत फैलाई जाती हैं, परंतु इसमें संदेह नहीं कि जो भगवान् का सर्वभाव से भजन करना जानता है, उसके संबंध में अवश्य ऐसी घटनाएँ हो सकती हैं।

के बारे में जब वह बातचीत करता, तब उसकी आँखें चमकने लगतीं, और वह खिलखिलाकर हँसता हुआ अपने हाथों की हथेलियाँ घिसने लगता।

एक बार कठिन बीमारी से पीड़ित होकर वह बिस्तर पर पड़ गया। बुखार से उसका शरीर जीर्ण हो गया था। उसके मुख की कांति उड़ गई थी। उस समय उसके छोटे भाई ने उसके बिस्तर के सामने आकर धीरे से कहा—"भाई साहब! आपके बदले अगर मैं प्रचार का काम हाथ में लूँ, तो वह आपको पसंद होगा?"

यह बात सुनते ही रोगी भाई के नेत्रों में तेज आ गया। उसने भाई का हाथ अपने हाथ में लेकर मंद हास्य करते हुए अपनी अनुमति ज़ाहिर की। इसलिये छोटे भाई ने गुप्त रीति से वहाँ के अधिकारियों को प्रार्थना-पत्र लिख भेजा कि मेरे भाई के बदले मुझे जाने की आज्ञा दी जाय।

एक दिन जब वह अपनी पुस्तक पढ़ रहा था, उस समय कॉलेज के ऊँचे अधिकारी ने आकर उसे बताया—"तुम्हारे जाने का निश्चय हो गया है।" यह समाचार सुनते ही वह लड़का ख़ुशी के मारे कूदने लगा। अपनी कोठरी से बाहर निकल आया, और पागल की तरह खेल के स्थान में जाकर नाचने लगा। उसका यह ढंग देखकर दूसरे विद्यार्थी आपस में कहने लगे—"यार! इसे तो आज कुछ चरका लग गया है!"

जोसेफ़ डेमियन काले पानी जाने के लिये इतना प्रसन्न क्यों हुआ ? जहाँ उसकी बोली बोलनेवाले लोग रहते हैं, जहाँ के रीति-रिवाजों और व्यवहारों को वह बहुत कुछ जान चुका है, ऐसी सुखदायक भूमि वह क्यों छोड़ना चाहता है ? स्नेही-संबंधियों से सदा के लिये दूर होकर समुद्रों के उस पार आधे जंगली लोगों में जाकर काम करने को वह क्यों इतना तड़प रहा है ? उत्तर एक हो सकता है, और वह यही कि भ्रातृप्रेम, समाज-प्रेम, देश-प्रेम और मानव-जाति के प्रति प्रेम।

अस्तु, धर्म-प्रचारक बनने के लिये उसने प्राप्त संयोगों को छोड़ दिया। क्योंकि जगत् की चहल-पहल, घर के सुख-वैभव, माता-पिता के स्नेह और स्वजनों के प्रेम की अपेक्षा वह जगदुद्धारक पैगंबर की आज्ञा, यानी दुःखदायक व्याधि से पीड़ित देश-बंधुओं की सेवा, ज्यादा पसंद करता था।

एक खिलाड़ी लड़के की तरह जोसेफ़ डेमियन ने नाचते-कूदते दक्षिण समुद्र के टापुओं की तरफ़ प्रयाण किया। वहाँ जाकर वह धर्म-प्रचारक बना। ३३ वर्ष की उम्र तक उसने बहुत अच्छी तरह अपना काम किया।

एक दिन जब वह लोगों के समुदाय के बीच अपने काम में लगा था, तब उसने वहाँ के भले पादरी को यह कहते सुना—"अफ़सोस ! मोलोकोई के बेचारे पतीयाँ लोगों के पास

भेजने को इस वक़्त मेरे पास कोई आदमी नहीं है। वे वेचारे दुखी जीव भयंकर रोग से पीड़ित होकर पाप-पंक में सड़ रहे हैं।"

जोसेफ़ डेमियन का हृदय पतियाँओं की वातें सुनकर कई बार दुखी हो चुका था। उसने पादरी से प्रार्थना की कि मुझे वहाँ भेजिए। पादरी ने उसकी प्रार्थना मंजूर कर ली।

इस तरह यहाँ दूसरा आत्मभोग दिया गया; क्योंकि पतियाँओं के प्रदेश में जाना बेलजियम से जंगली लोगों के पास जाने की अपेक्षा भारी आत्मभोग का काम था। वेचारे पतीयाँ लोग अकेले ही रहते थे। तंदुरुस्त मनुष्यों से उन्हें दूर ही रक्खा गया था। उनके भयंकर शारीरिक रोग से उनकी आत्मा में भी बिगाड़ हो गया था। उनकी झोपड़ियाँ ढोरों के बाड़े से भी निकम्मी थीं। पशुओं से उनका जीवन किसी तरह बढ़कर नहीं था। देखने में वे इतने भयावने लगते थे कि उनकी तरफ़ कोई देखना भी नहीं चाहता था!

परंतु गुरु डेमियन ने उन त्यक्त लोगों के पास जाकर उन्हें एक सादा संदेश सुना दिया—'प्रभु तुमको चाहता है।" इसके सिवा डेमियन की आनंदी मुख-मुद्रा, सुख-कारक स्वर, स्नेह-भीनी आँखें और सबसे ज्यादा उसकी वाणी में समाई हुई जीवित श्रद्धा इत्यादि गुणों से वे जंगली लोग पशु-श्रेणी से बदलकर मनुष्य बने, और

मनुष्य से प्रभु के बालक। अपने पाप-कर्म से अब वे शर्माने लगे। उन्हें मालूम होने लगा कि सचमुच प्रभु हमें चाहता है।

सोलह वर्ष तक इस पवित्र और भक्तिमान् महात्मा ने पतीयाँ लोगों में निवास किया। इसने उनके लिये एक मंदिर बनवा दिया। उसमें वे लोग बड़े प्रेम से प्रार्थना करने जाते थे। इसने उनके लिये अच्छे घर बनवा दिए, और अच्छे जल का इंतज़ाम कर दिया। उनके भयंकर ज़ख्मों में पट्टियाँ बाँधीं. और अनेक प्रकार से उनकी सेवा-शुश्रूषा करने लगा। मौत के समय यह उनको आश्वासन देता, और जो मर जाते, उनके लिये क़ब्रें खोदता। इस टापू के बाहर के बहुत लोग इस धर्म-प्रचारक का हाल सुनकर इससे मिलने आते थे। पर अंत में यह भी भयंकर रोग का भोग हो गया।

एक दिन उसे चेतावनी मिली। वह खौलते हुए जल की डेगची लेकर जा रहा था, इतने ही में अचानक वह उस पर ढुलक पड़ी, पर वह ज़रा भी नहीं जला। आश्चर्य में पड़कर वह डॉक्टर के पास गया। पूछा—"डॉक्टर साहब ! क्या मेरे कोढ़ निकला है ?" डॉक्टर ने दबी ज़बान से कहा—"हाँ, आपको कोढ़ का असर हो गया है।" इसी घड़ी से वह अपने व्याख्यानों में "मेरे बंधुओ" की जगह "हम पतीयाँ लोग" कहने लगा। परंतु वह सब तरह से सुखी

मालूम होता था। कहता था—"अगर कोई मुझसे कहे कि इस टापू को छोड़ जाने से तुम्हारा रोग मिट जायगा, तो भी मैं अपने पतीयाँ भाइयों को नहीं छोड़ूँगा।"

इस प्रकार डेमियन के शरीर पर मृत्यु का आक्रमण होते हुए भी वह अपना काम बराबर करता रहा। अंत में जब वह कठिन रोग में पड़ गया, तब भी उसने ईश्वर की तरफ़ से मिले हुए सुखों और शुभाशीषों के लिये ईश्वर का उपकार माना। इस समय दो पादरी और धर्म-विभाग की दो बहनें उसके बिस्तरे के पास प्रार्थना करने आ गईं।

उनमें से एक पादरी ने कहा—"गुरु! जब आप स्वर्ग जायँगे, तब इन निराधार पतीयाँ-बालकों को तो न भूलेंगे?"

धर्म-गुरु ने मुस्किराते हुए कहा—"नहीं, बिलकुल नहीं। अगर मुझे प्रभु के दर्शन होंगे, तो मैं उनके सामने भी पतियाँओं के सब कृत्यों को क्षमा करने की प्रार्थना करूँगा।"

जमीन पर घुटने टेककर दूसरे पादरी ने कहा—"गुरु! खलीजा की तरह क्या आप मुझे अपना लबादा (ढीला अँग-रखा) देते जायँगे?"

गुरु डेमियन ने हँसते-हँसते पूछा—"तुम उसका क्या करोगे?" थोड़ी देर शांत रहकर फिर कहा—"अच्छी बात है, लेना; पर वह कोढ़ के रोग से भरा हुआ है।"

भला, यह लबादा कितना सुंदर होना चाहिए। इसे पहनते-पहनते गुरु डेमियन का सारा जीवन बीता ! इससे बढ़िया और सुंदर लबादा तो किसी राजा-महाराजा ने भी न पहना होगा। क्योंकि इस लबादे में मानव-प्रेम का अपूर्व सौरभ महक रहा है !

थोड़ी देर बाद डेमियन की आत्मा का देवदूतों ने फूलों से स्वागत किया। परमात्मा हमारे भारतवासी देश-सेवकों को भी त्याग, निःस्वार्थता और उदारता की ऐसी ही मूर्ति बनाएँ।

---

(३)

स्वामी बालानंद की त्याग-वृत्ति

डिप्टी कलेक्टर रामचरण वसु वैद्यनाथ में अपने गुरु स्वामी बालानंद के साथ रहते थे। एक बार इन्होंने स्वामीजी को क़ीमती शाल ओढ़ाया। स्वामीजी उसी दिन शाल ओढ़कर बाहर घूमने गए। मार्ग में आपने एक मनुष्य को ठंड से काँपते हुए देखा, और फ़ौरन् अपना वह दुशाला उसे ओढ़ा दिया !

जब आप लौटे, तो शिष्य ने आपके अंग पर दुशाला नहीं देखा, इसलिये बहुत नम्रता-पूर्वक गुरुजी से पूछा—'महाराज ! दुशाला कहाँ गया ?"

गुरुजी हँसकर बोले—"रामचरण ! तूने मुझे वह शाल दे दिया था, या मज़दूर की तरह उठाने को दिया था ?"

शिष्य ने कहा—"बिलकुल आपको ही समर्पण कर दिया था।"

गुरुजी ने कहा—"तो फिर उसका क्या हुआ, क्या नहीं हुआ, इसकी पंचायत तू किसलिये करता है?"

सचमुच पर-दुःख निवारण करने के लिये अपनी प्रिय-से-प्रिय और क़ीमती-से-क़ीमती वस्तु का त्याग कर देना संन्यासियों का लक्षण है।

---

(४)

मुहम्मद साहब का मद्य-निषेध

महापुरुष मुहम्मद पैग़ंबर ने अपने यौवन-काल में एक गाँव में जाते समय देखा कि संध्या-समय अनेक अरब लोग इकट्ठे होकर शराब पी रहे हैं, और इस अवस्था में ख़ूब हँस रहे तथा आनंद-पूर्वक समय बिता रहे हैं। दूसरों को सुखी देखकर स्वभावतः एक सात्त्विक पुरुष को जो आनंद होना चाहिए, वह मुहम्मद साहब को उस दिन हुआ।

दूसरे दिन लौटते समय उन्होंने देखा कि वहाँ बहुत-सा ख़ून बह रहा है! पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि बहुत शराब पीकर उन अरब लोगों ने गई रात को बहुत

तूफ़ान मचाया, और उनमें से कितने ही मारे गए, और घायल तो बहुत हुए हैं !

इस घटना का मुहम्मद साहब पर बहुत असर हुआ। इसी असर के कारण जब उन्होंने इस्लामी धर्म का प्रचार किया, तब इस घटना को ध्यान में रखकर अपने धर्म में शराब पीने की सख़्त मनाही कर दी। इसी से आज भी सच्चे मुसलमान शराब छूना भी महापाप समझते हैं।

---

(५)

सुलतान मुज़फ़्फ़र की उदारता

सुलतान (दूसरे) मुज़फ़्फ़र के समय में उसके एक खोजा अफ़सर ने मृत वज़ीफ़ादारों की जागीरें सरकार में ज़ब्त कर लीं, और इस तरह बहुत-सा पैसा लाकर बादशाह के सामने रक्खा।

बादशाह ने पूछा—"यह किसका पैसा है, और कहाँ से लाए हो ?"

अफ़सर ने उत्तर दिया—"सुलतान का है; क्योंकि सुलतान (पहले) मुज़फ़्फ़र के वक़्त से यह वज़ीफ़ा धार्मिक पुरुषों को बख़्शा गया था, और तब से आज तक उसकी आमदनी बढ़ती गई। जब मैंने जाँच की, तो मालूम हुआ कि असल वज़ीफ़ेदारों में से बहुत-से मर गए हैं। इसीलिये

उनके वज़ीफ़े की आमदनी इकट्ठी करके आपके सामने लाया हूँ।"

बादशाह ने उससे भला-बुरा कहा, और फ़रमाया—"अरे बेवक़ूफ़ और बेशरम! तुझसे मैं क्या कहूँ? तू अगर मर्द होता, तो तुझे बावला कहता; और स्त्री होता, तो बुरे आचरणवाली स्त्री कहता; पर तू न आदमी में है, न औरत में, बल्कि दोनो के ख़राब गुण तुझमें मौजूद हैं। जो वज़ीफ़ादार मर गए हैं, उनके लड़के होंगे, और लड़के मौजूद न होंगे, तो उनकी स्त्रियाँ या लड़कियाँ होंगी। और, वे भी मौजूद न होंगी, तो उनकी दासियाँ या ग़ुलाम ज़रूर होंगे। तूने अपने ही मन से यह काम बहुत बुरा किया है। अब ख़बरदार, ऐसा काम मत करना। जा, जिनके-जिनके पास से यह रक़म लाया है, उन्हें वापस कर दे, और उन ग़रीबों के सूखे हुए दिलों को माफ़ी के जल से हरा-भरा कर दे।"

इसके बाद सुलतान ने हुक्म निकाला—"गुजरात में जो लोग देवस्थान के वास्ते वज़ीफ़ा पा रहे हैं, वे अगर मर गए हों, तो उनके वारिसों में वह वज़ीफ़ा बाँट दिया जाय। और, अब राज्य का कोई भी अफ़सर अभी या आगे वज़ीफ़ादारों के संबंध में अपनी अक़्लमंदी न दिखावे।"

---

(६)

भूदेव मुखोपाध्याय का अंत्यजोद्धार

एक दिन बंगाल की पाठशालाओं के डिप्टी इंस्पेक्टर प्यारी-सोहन मुखोपाध्याय ने स्वर्गीय भूदेव मुखोपाध्याय से पूछा—"आपने ग्रीस, रोम और इँगलैंड के इतिहास लिखे, पर भारतवर्ष का इतिहास नहीं लिखा, इसका क्या कारण है ?"

भूदेव ने उत्तर दिया—"ग्रीक, रोमन और अँगरेज़, इन तीन मशहूर स्वदेश-भक्त लोगों के इतिहास से भारतवासियों को सीखने का बहुत मसाला मिल सकता है। भारतबर्ष के पिछले समय का राजनीतिक इतिहास सिर्फ़ दो प्रायश्चित्त का इतिहास है।"

प्यारीमोहन बाबू ने पूछा—"भारतवासी किन-किन दो पापों का प्रायश्चित्त कर रहे हैं ?"

भूदेव ने बताया—"पहला पाप स्वधर्म द्वेष और दूसरा पाप स्वदेश-विद्वेष।"

स्वधर्म-द्वेष के संबंध में उन्होंने बताया कि हिंदू लोग अपने नीचे के वर्ग का 'अंत्यज वर्ण' नाम रखकर पशुओं से भी ज्यादा तिरस्कार करते हैं। जिस जगह कोई डोम या भंगी बैठा होता है, उस जगह को वे लोग गोबर से लीपते हैं। लेकिन अगर उसी जगह कुत्ते, बिल्ली मल-त्याग कर जायँ, तो सिर्फ़ वहाँ कूड़ा-कर्कट जलाने से ही काम

चल जाता है। इस समय साधारण हिंदू अंत्यजों के सुख-दुःख के बारे में बिलकुल बेपरवाह हैं। व्यवहार-क्षेत्र में हिंदुओं का यह स्वधर्मी विद्वेष निकाल डालने के लिये भगवान् ने अपनी असीम करुणा से मुसलमानों को राजकर्ता और शिक्षक के रूप में भारतवर्ष भेजा है, जो सबसे ज्यादा स्वधर्मियों पर प्रेम रखते हैं, और उनके साथ आहार-व्यवहार में यह भेद-भाव नहीं रखते कि कौन भिखारी है, कौन बादशाह। उनके यहाँ पंडित, मूर्ख, रंक, राव, सब बराबर हैं। ईद के दिन हरएक श्रेणी के हजारों मुसलमान इकट्ठे होकर "बिसमिल्लाह हिर्रहमाने रहीम" शब्दों से विश्व-नियंता भगवान् की उपासना करते हैं। यह कितना सुंदर दृश्य है। अंत्यज बेचारे जब तक हिंदू-धर्म को मानते हैं, तब तक तो वे तिरस्कार ही पाते रहते हैं; लेकिन जब वे ही अंत्यज कलमा पढ़कर मुसलमान हो जाते हैं, तब हिंदू लोग "सलाम मियाँ साहब" कहकर उनका सम्मान करते और उन्हें कुर्सी पर बिठाते हैं। परंतु जब भील, कोली, चमार, भंगी ईसाई-धर्म की दीक्षा लेकर मिस्टर विलियम या मिस्टर जॉन बन जाते हैं, तब उनसे हाथ मिलाने, गुडमॉर्निंग करने और पहचान करने में ये ही हिंदू लोग अपना अहोभाग्य समझते हैं। मुसलमानों के राज्य में स्वधर्म के इस द्वेष का प्रायश्चित्त सैकड़ों वर्षों तक करने के बाद महाराष्ट्र और पंजाब से यह दोष कुछ दूर

हुआ था। मुग़लों के साथ धर्म-युद्ध करते समय आहार-विहार में वर्ण-भेद होते हुए भी सेना और राज्य में आगे बढ़कर ऊँचा दर्जा पाने का मार्ग, बिना किसी भेद-भाव के, हरएक योग्य महाराष्ट्री के लिये खुला था। इसी से होल्कर, गायकवाड़ और सिंधिया ऊँची जाति के न होते हुए भी राजगद्दी पर बिराजने योग्य हुए थे। पंजाब के सिक्ख लोगों में सब जाति के लोग 'सिंह' पदवी धारण करते हैं, और विवाह के विषय में भेद होते हुए भी सारी सिक्ख-जाति में पूरी एकता देखने में आती है।

---

(७)

योग्य अफ़सर और सिपाही

आर्मी नाम के अँगरेज़ इतिहासकार ने भारतवर्ष का एक इतिहास लिखा है। उसमें देशी सिपाहियों के शौर्य और प्रामाणिकता का उत्तम परिचय कराया है। प्रशिया के राजा महान् .फ्रेडरिक ने यह बात जानकर कहा—"ऐसे सिपाहियों का अगर मैं अफ़सर होता, तो सारे योरप को जीत लेता।"

सच है। लेकिन अगर ऐसे सत्य-निष्ठ और वीर सैनिकों को भारत में ही .फ्रेडरिक-जैसा नेता मिलता, तो ?

---

(८)

चित्रकार का स्वार्थ-त्याग

इँगलैंड में सृष्टि-सौंदर्य का सुप्रसिद्ध चित्रकार टरनर था। एक बार यह 'रॉयल एकाडेमी' की प्रदर्शनी में 'चित्र चुननेवाली कमेटी' का मुख्य सभासद् था। उसके ख़ुद के देश-विख्यात चित्र योग्य स्थान पर टाँगे गए थे। दूसरों के चित्रों को यथास्थान लगाने का काम भी पूरा किया गया था। भीत पर अब एक भी चित्र के लिये स्थान नहीं था। पर इसी समय एक नए चित्रकार का चित्र इसे अच्छा मालूम हुआ, और उसे दीवार पर टाँगने की इच्छा हुई। कमेटी के दूसरे सभासदों ने कहा—"चित्र अच्छा है; पर हमारे पास जगह नहीं है। अब कौन-सा चित्र उतारकर इसका चित्र टाँगा जाय ?"

टरनर ने कहा—"जब सभी को यह चित्र अच्छा मालूम हुआ, तो जगह की तंगी के लिये इस चित्रकार का उत्साह नहीं तोड़ना चाहिए।"

यह कहकर टरनर ने फ़ौरन् अपना एक चित्र उतार लिया, और उसकी जगह वह चित्र टाँग दिया, जो उत्तमता की दृष्टि से टरनर के चित्र के समान नहीं था।

यह देखकर सब टरनर की तारीफ़ करने लगे।

---

(६)

सच्चा कलावान् कौन है ?

टॉल्स्टॉय का एक मित्र चित्रकार था। नाम था गे। गे ने ईसा से मिलते-जुलते चित्र बनाने शुरू किए। उस समय टॉल्स्टॉय ने जो उपदेश उसे दिया, वह ध्यान देने लायक़ है।

टॉल्स्टॉय ने कहा—"सच्चा कलावान् वही हो सकता है, जिसके हृदय में किसी उपकारक विषय का ज्ञान और चरित्र लबालब भरा हो, और फिर वह बाहर निकलने के लिये ज़ोर मार रहा हो; अर्थात् उस विषय की अपनी जानकारी लोगों को बताने के लिये प्रबल इच्छा उसके हृदय में ज़ोर मार रही हो, जिसको काम में लाना उसको याद हो, फिर चाहे वह लेखक हो, चित्रकार हो, या कोई भी कला का आश्रय लेने-वाला हो। जुदी-जुदी कलाओं के बाहरी रूप जुदे-जुदे होते हैं, पर सबकी जड़ तो एक ही प्रकार की होती है।"

---

(१०)

गदाधर भट्टाचार्य की अपूर्व लगन

गदाधर वारेंद्र श्रेणी के बंगाली ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम जीवाचार्य था। पालना-ज़िले के लक्ष्मीआपड़ गाँव में वह रहते थे।

गदाधर बाल्य-काल में विद्याभ्यास करने के लिये नवद्वीप (नदिआ)-शहर को गए, और सुप्रसिद्ध हरिराम तर्क-वागीश की ग्राम्य पाठशाला में भर्ती हुए। वहाँ आपने बहुत परिश्रम और लगन के साथ न्याय-शास्त्र का अभ्यास किया। अभ्यास करने से थोड़े ही समय में आपकी विद्या और बुद्धि की ख्याति नवद्वीप के पंडितों में फैल गई।

जब गुरु हरिराम का स्वर्गवास हुआ, उस समय ऐसा कोई योग्य शिष्य न था, जो उनकी पाठशाला चला सकता। गदाधर की विद्या-बुद्धि का अच्छा परिचय होने से गुरुजी अच्छी तरह जानते थे कि इस बालक का विद्याभ्यास अभी पूरा नहीं हुआ है, तो भी यह अपने असाधारण बुद्धि-बल से सब विघ्नों को तोड़कर पाठशाला चलाने में समर्थ होगा। यह विचारकर उन्होंने अपनी पत्नी को बुलाकर कहा—"मेरी मृत्यु के बाद पाठशाला का काम गदाधर को सौंपना।"

स्वामी की मृत्यु के बाद पत्नी ने उनके आज्ञानुसार गदाधर को पाठशाला का अध्यापक बनाया, परंतु अभ्यास पूरा न होने से गदाधर को कोई उपाधि नहीं मिली थी, इसलिये यह अपने वंश-परंपरा के 'भट्टाचार्य' नाम से ही प्रसिद्ध थे।

गदाधर ने अध्यापकी का काम शुरू किया। परंतु उस पाठशाला के कई विद्यार्थियों ने उनके पास पढ़ने से साफ़

इनकार कर दिया, और वे इस पाठशाला को छोड़कर दूसरी पाठशाला में जाने लगे।

उस समय ऐसा नियम था कि यदि शिक्षक अध्यापक या ग्रंथकार के वंश का न होता, तो उसके पास कोई भी पढ़ने नहीं जाता था। छापेखाने न होने से पुस्तकों का प्रचार कम था। अध्यापक या ग्रंथकार का घर छोड़कर दूसरी जगह पुस्तकों का संग्रह नहीं मिलता था। इसलिये दूसरे कुटुंब के शिक्षकों के पास अच्छी पुस्तकों का अभाव रहता, और विद्यार्थियों को उनके पास पढ़ने में बड़ी अड़चन पड़ती थी।

विद्यार्थियों के चले जाने से ही तेजस्वी, उद्यमी और दृढ़ इच्छावाले गदाधर की उन्नति का बीजारोपण हुआ। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि चाहे जिस उपाय से हो, मैं अपनी विद्या और बुद्धि का परिचय देकर विद्यार्थियों को अपने पास पढ़ने के लिये बुलाऊँगा।

अब इन्होंने हरिराम की पाठशाला छोड़कर गंगा-तट पर एक चतुष्पाठी स्थापन की, और एक छोटा-सा फूल-बाग़ लगाया। ब्राह्मण पंडित पूजा के लिये ख़ुद ही फूल तोड़ लाते थे, अतएव गदाधर के बग़ीचे में ब्राह्मण अध्यापक तथा विद्यार्थी पुष्प चुनने के लिये आने लगे, और हमेशा वहाँ इनका समागम होने लगा।

इधर गदाधर ने पुष्प के पेड़ के पास बैठकर उसी को

संबोधित करके पढ़ाना शुरू किया । प्रतिदिन संध्या-समय वहाँ बहुत-से अध्यापक और विद्यार्थी पुष्प तोड़ने और गंगा-स्नान करने आते थे । वे ध्यान-पूर्वक इनका पाठ सुनते थे । इस समय गदाधर पंडित न्याय-शास्त्र के कठिन पाठों को समझ में आने के लायक़ अतिशय सरल बनाकर पढ़ाते थे, और उन्हें लिखते भी जाते थे। विद्यार्थियों को आपके ये व्याख्यान नए लगने लगे, और वे मन-ही-मन गदाधर की बहुत प्रशंसा करने लगे । नतीजा यह हुआ कि कई विद्यार्थी चुपचाप गदाधर के घर जाकर अपना संदेह दूर करने लगे, और कितने ही इनकी पुस्तकों के पन्ने घर ले जाकर उनकी नक़ल करने लगे । इस तरह कई लोगों ने गुप्त रूप से उनके पास पढ़ना शुरू किया ।

उस समय गदाधर रघुनाथ-कृत 'बौद्धाधिकार-दीधिति' ग्रंथ की टीका रच रहे थे । लिखनेवाले की भूल से 'शिष्यते' के बदले 'शिच्यन्ते' पाठ लिखा गया । इस पुस्तक का यह पन्ना नैयायिक जगदीश की पाठशाला के किसी विद्यार्थी के हाथ में गया । उसको इस ग़लती पर नज़र पड़ी, और उसने वह पन्ना कुत्ते के गले में बाँध दिया । थोड़ी देर में यह समाचार गदाधर के कानों में पहुँचा । इन्होंने फ़ौरन् उस कुत्ते को पकड़ाकर उसके गले से वह पन्ना खोल लिया, और अपनी असाधारण शक्ति तथा प्रतिभा के बल से 'शिच्यन्ते' पाठ को ही ठीक साबित करके नई व्याख्या

लिख डाली। इसके बाद यह टीका जगदीश पंडित के पास भेजी गई। जगदीश ने यह टीका बाँचकर कहा—"गदाधर की इस टीका को पढ़ने के बाद मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि दोनो में से कौन-सा पाठ ठीक है।"

इस घटना के बाद गदाधर की ख्याति और प्रतिष्ठा सारे नवद्वीप में फैल गई, और विद्यार्थियों से उनकी पाठशाला भर गई।

इस तरह गदाधर पंडित ने अपनी लगन, दृढ़ता और अविचल उत्साह के बल से नवद्वीप में अध्यापक का कार्य किया।

---

(११)

भर्तृहरि की अपूर्व सहनशीलता

महाराज भर्तृहरि राजवैभव त्याग कर चुके थे। एक दिन किसी ने आपको गाली दी। आप संन्यासी तो हो ही चुके थे, बोले—"भाई! मुझे गाली की जरूरत नहीं, इसलिये मैं तुम्हारा यह दान ग्रहण नहीं कर सकता। अब मेरे पास कुछ भी नहीं है; यहाँ तक कि तुम्हें देने के लिये गाली भी मेरे पास नहीं रहने पाई है; इसलिये मैं लाचार हूँ, तुम्हें कुछ भी नहीं दे सकता।"

महात्मा भर्तृहरि के ये वचन कितने उपदेश से भरे हुए हैं, इसका हम लोगों को मनन-पूर्वक विचार करना चाहिए !

---

(१२)

मूरों का स्वधर्म में विश्वास

एक बार अलजीरिया में मूरों के बलवे मे एक फ्रेंच-सैनिक बलवाखोरों के हाथ पकड़ा गया। बलवाखोरों ने इस कैदी के साथ किसी प्रकार का जुल्म नहीं किया; परंतु उनकी बातचीत से फ्रेंच-क़ैदी समझ गया कि फ्रेंच लोगों से उनका कितना गहरा द्वेष है।

एक दिन इस क़ैदी ने उनसे पूछा—"आप हम लोगों को इतने द्वेष और तिरस्कार की दृष्टि से क्यों देखते हैं ?"

मूरों ने उत्तर दिया—"तुम हमारे देश में आए ही किसलिये ?"

क़ैदी ने कहा—"तुम्हारे देश की उन्नति करने, तुम्हें सभ्य और ईश्वर पर विश्वास रखनेवाला बनाने के लिये हम तुम्हारे देश में आए हैं।"

मूरों ने कहा—"बाहर की सभ्यता की हमें जरूरत नहीं, और यह टिकनेवाली भी नहीं है। ईश्वर पर हमारा पूरा विश्वास है। इस देश में ऐसा कौन-सा

मुसलमान है, जो रोज़ नमाज़ नहीं पढ़ता ? सच पूछो, तो ईश्वर पर अविश्वास रखनेवाले तुम हो। तुममें से हमने किसी को भी ईश्वर की आराधना करते नहीं देखा।"

आजकल योरप में सुधरे हुए लोग जड़वादी बनते जाते हैं। ईसाई या दूसरे किसी भी धर्म में इनका विश्वास नहीं। लौकिक धन और भोग-विलास ही इनका एक-मात्र लक्ष्य हो गया है। तो भी पादरी लोग धर्म फैलाने के लिये सात समुद्र लाँघकर भारतवर्ष आते हैं, यह आश्चर्य की बात है !

---

(१३)

खलासी के वचन से कुटेव का त्याग

कलकत्ते की सीताराम घोष-स्ट्रीट में स्वरूपचंद्र बंद्योपाध्याय नाम के एक धनाढ्य पुरुष रहते थे। उन्होंने अच्छी शिक्षा पाई थी। अँगरेज़ी शिक्षा के कारण वहाँ के युवकों में शराब पीने का शौक बहुत बढ़ गया था। स्वरूपचंद्र में तो यह दोष ज़्यादा आ गया था, परंतु इनमें दूसरे अनेक गुण थे, इसलिये भूदेव मुखोपाध्याय के साथ इनकी मित्रता थी। मित्रों के साथ विद्या की चर्चा में इनका बहुत-सा समय जाता था।

एक दिन इन्हें बग़ीचे में बाँस के एक घर की मरम्मत

कराने की जरूरत पड़ी। इन्होंने एक खलासी को बुलाकर कहा—"शंभू, मुझे इस मकान की मरम्मत करानी है, आज ही काम शुरू कर दो।"

शंभू ने विनय-पूर्वक कहा—"आज तो न कर सकूँगा, परसों से शुरू करूँगा। दो दिन दूसरा काम करने का वादा कर आया हूँ।"

स्वरूपचंद्र बोले—"परसों का वादा तो पक्का है न?"

शभू ने कहा—"महाशय, मैं शराबी तो हूँ नहीं, जो अपना वादा पूरा न करूँ!"

यह बात स्वरूपचंद्र के दिल में खटक गई। बोले—शंभू, क्या शराब पीनेवाले झूठ बोलते हैं?"

खलासी ने जवाब दिया—"बेशक, शराब पीने से मनुष्य का मनुष्यत्व जाता रहता है। तब भला, अपनी बात का ध्यान उन्हें कैसे रहे?"

स्वरूपचंद्र ने उसी वक्त शराब की बोतल तोड़कर फेंक दी, और सदा के लिये शराब पीना त्याग कर दिया। उस रोज से आप शंभू का विशेष आदर करने लगे।

बात की चोट समय पर अपना असर दिखा देती है, और उससे सँभलकर जो पुरुष अपने दोषों को मिटा देता है, वह धन्य है।

---

(१४)

निर्भीक युवक और राजा की दया

खुरासान-देश का एक राजा बहुत सख्त बीमार हुआ। ग्रीस-देश के हकीमों ने राय दी—"अगर आप किसी युवक के मृत शरीर का उपयोग करें, तो नीरोग हो सकते हैं।" राजा ने एक ग़रीब को धन का लालच देकर उसके जवान पुत्र को मार डालना उससे मंजूर करा लिया। इस काम में पाप है या नहीं, इसके बाबत क़ाज़ी से पुछवाया गया। क़ाज़ी ने बताया—"राजा आरोग्य के लिये प्रजा का प्राण लेना शास्त्रानुकूल है।" ऐसी व्यवस्था देकर उसने युवक के वध का परवाना लिख दिया।

जल्लाद आ पहुँचे। उस समय उस युवक ने ज़रा हँसते-हँसते ऊँची नज़र की। राजा ने आश्चर्य में होकर पूछा—"ऐसी हालत में भी तुझे हँसना कैसे आता है?"

युवक ने कहा—"संतान माता-पिता का प्यारा-से-प्यारा धन है। संतान के प्रति अगर कोई अत्याचार करे, तो माता-पिता क़ाज़ी के सामने फरियाद करने जाते हैं। यदि क़ाज़ी न सुने, तो राजा के सामने फरियाद ले जाते हैं, और वही अंतिम न्याय करता है। मेरे माता-पिता ने धन के लोभ में आकर मुझे मृत्यु के मुख में ढकेल दिया। क़ाज़ी ने भी मौत का हुक्म फ़रमा दिया, और राजा की नज़र तो सिर्फ़ अपनी तंदुरुस्ती की तरफ़ है। ऐसी हालत में

इस जगत् में मेरा कोई नहीं है। इसी दुःख से मुझे हँसी आती है, और इसी से मेरी दृष्टि स्वाभाविक तौर पर ही बड़े बादशाहों के भी बादशाह भगवान् की तरफ़ जाती है।"

यह बात सुनते ही राजा का अंतःकरण पिघल गया। उसने मन में विचार किया—"इस निरपराध युवक का रक्त-पात होने की अपेक्षा तो मेरी मृत्यु हो जाना ज्यादा अच्छा है।" यह सोचकर उसने फौरन् युवक के मस्तक का चुंबन किया, और बहुत-सा धन देकर उसे छोड़ दिया।

इस पुण्य कार्य से राजा की आत्मा को इतनी ज्यादा प्रसन्नता हुई कि उसी दिन से उसकी तबीयत सुधरने लगी, और थोड़े दिनों में वह बिलकुल तंदुरुस्त हो गया।

एक निर्दोष व्यक्ति की मौत रोककर इस राजा ने कितना उत्तम लाभ उठाया, यह देखना चाहिए।

---

(१५)

'धर्म'-शब्द की महत्ता

प्रसिद्ध विद्वान् भूदेव मुखोपाध्याय से किसी ने पूछा—"मनुष्यों के सारे कर्तव्यों को एक ही सूत्र द्वारा प्रकट किया जा सकता है या नहीं?" उन्होंने उत्तर दिया—"ऐसा ही प्रश्न चीन के महान् धर्मोपदेशक कन्फ्यूशियस से किसी ने पूछा था, और उसके उत्तर में उन्होंने बताया था—"विनिमय (देना और लेना) एक ऐसा शब्द है, जिसमें सभी

१८८

कर्तव्यों का समावेश हो जाता है।" ईसाई सूत्र है—"जैसा बर्ताव तुम दूसरों से चाहो, वैसा ही उनके प्रति रक्खो।" यह सूत्र भी ऐसे ही भाववाला है। हम सनातनधर्मी समस्त कर्तव्यों को 'धर्म'-जैसे संक्षिप्त नाम से पहचानते हैं। और, धर्म का मूल अगर ढूँढ़ा जाता है, तो वह 'प्रीति' अथवा 'सहानुभूति' में मिलता है; क्योंकि इन्हीं से 'धर्म'-शब्द और स्वार्थ-त्याग उपजता है।

---

(१६)

सुख और दुःख का अस्थायित्व

अरबिस्तान में किसी अच्छे घराने का लड़का दुर्दशा में पड़ गया; इसी से वह शत्रुओं के हाथों पकड़ा गया। शत्रुओं ने उसे ग़ुलाम के तौर पर बेच दिया। जिस सेठ के हाथ बेचा, वह बहुत ही निर्दय था।

एक दिन एक व्यापारी उस गाँव में व्यापार करने आया। वह इस ख़ूबसूरत नौजवान को कठोर परिश्रम करते देखकर बोला—"भाई, तुमको बहुत दुःख है।" युवक ने कहा—"जो दुःख पहले नहीं था, भविष्य में भी नहीं रहेगा, उसके लिये चिंता ही क्यों करनी चाहिए ?"

कितने ही वर्षों के बाद वह व्यापारी फिर उस गाँव में आया। तब उसे मालूम हुआ कि सेठ मर गया है, और सेठ का दिवाला निकल जाने से यह ख़ानदानी ग़ुलाम

गुलामी से मुक्त होकर अपनी कमाई से सेठ की निराधार पत्नी और पुत्र का पालन-पोषण करता है। उस समय भी उसं बाहरी व्यापारी ने इस युवक से खबर पूछी। युवक ने वही जवाब दिया—"जो परिवर्तनशील है, उसमें सुख और दुःख क्यों मानना चाहिए?"

दो वर्ष बाद उसी व्यापारी ने फिर आकर देखा, तो मालूम हुआ कि वही युवक जिले का मुखिया हो गया है, और उसकी मातहती में बहुत-से आदमी नौकर हैं! आस-पास के गाँववालों ने इसी को अपना सरदार बनाकर लुटेरों और डाकुओं को दबा दिया है! इस सेवा के बदले में उन लोगों ने इसे बहुत-सी जमीन दे दी है। इस समय भी व्यापारी ने प्रश्न किया, और पहले-जैसा ही जवाब युवक ने दिया।

थोड़े दिन बाद फिर वह व्यापारी उसी गाँव में आया। तब उसे खबर मिली कि अब तो वह युवक राजा हो गया है। एक खास युद्ध में वहाँ के राजा को विशेष सहायता देकर वह राजा का जमाई और वारिस बन गया है। व्यापारी ने इस राजा के पास जाकर पूछा—"अब तो सुखी हुए न?" राजा ने उत्तर दिया—"जो पहले नहीं था, और आगे भी नहीं रहेगा, उसके लिये सुख और दुःख क्यों मानना चाहिए?"

सच है, इस संसार में स्थिर कुछ भी नहीं है। यह

सारा संसार अस्थिर है। इसमें सुख-दुःख से मन को विचलित न करते हुए प्रभु की तरफ ही लक्ष्य रखना चाहिए। प्रभु जिस स्थिति में रक्खें, उसी में आनंद से रहना चाहिए। इसी में परम शांति है।

---

(१७)

मधुसूदन चटर्जी का विद्याभ्यास

रुड़की के इंजीनियरिंग-कॉलेज के उत्तम विद्यार्थी और निज़ाम-राज्य के इंजीनियर मधुसूदन चट्टोपाध्याय का देहांत सन् १९०८ में हुआ। यह जब निज़ाम सरकार की नौकरी में थे, तब हुसैन-सागर के विशाल तालाब का बाँध टूट गया। अलौकिक कार्य-कुशलता और अत्यंत परिश्रम से इन्होंने सिर्फ़ तीन घंटे में उस बाँध की मरम्मत करा दी, और सिकंदराबाद शहर को नष्ट होने से बचाया।

इस असाध्य काम के करने से इस बंगाली इंजीनियर का नाम हैदराबाद के सभी लोगों के मुख से निकलने लगा। यहाँ तक कि सन् १९१० में जब मूसी-नदी का बाँध तोड़कर पानी ने हैदराबाद शहर को डुबो दिया, तब लोग कहने लगे—"आज मधुसूदन बाबू नहीं हैं, नहीं तो हम सब ऐसी आफ़त में कभी न पड़ते।"

एक देशी इंजीनियर की ऐसी कीर्ति सुनकर, एक भारत-

चासी की कार्य-कुशलता के लिये किसके दिल में पूज्य भाव न उपजेगा?

यही मधुसूदन जब सात वर्ष के थे, तब इनके पिता का देहांत हो गया, और आप बहुत दरिद्र-दशा में आ पड़े। दीपक जलाने को भी घर में पैसे नहीं थे। आप रात को सड़क की लालटेन के उजाले में खड़े होकर पाठ याद करते थे। शिवचंद्र गुह नाम के एक बंगाली ने आपको रात के समय इस तरह अभ्यास करते देखकर बड़ा आश्चर्य किया, और पूछने पर उनकी दरिद्र-दशा से वाक़िफ़ हुए। ऐसे अदम्य उद्योगी बालक के लिये शिवचंद्र के दिल में श्रद्धा और प्रीति उत्पन्न हुई, और उन्होंने पाँच रुपए मासिक इस लड़के को पढ़ाने के लिये मुक़र्रर कर दिए। इन पाँच रुपयों में से भी प्रति मास दो रुपए यह बालक अपनी माता की सहायता के लिये भेजता था! इस तरह दरिद्रता में भी मधुसूदन ने इतना अच्छा अभ्यास किया कि परीक्षा में हमेशा इनका नंबर ऊँचा रहता था।

---

(१८)

गृह-कलह और वृथा पश्चात्ताप

गुजरात के एक नामी वकील ने अपने सगे भाई से बहुत समय से बिगाड़ कर लिया था। दोनों में बोलने का व्यवहार भी नहीं रहा था।

एक बार वकील साहब बीमार हुए। भाई के प्रेम ने ज़ोर मारा। भाई इनको देखने के लिये आया, पर टेक ऐसी कि एक शब्द भी नहीं बोला। इस तरह यह भाई को देखने के लिये आए, लेकिन खाली बैठकर चले गए। बीमार भाई भी अपनी टेक में रहा, और एक शब्द भी नहीं बोला। हृदय में एक प्रकार की ग्लानि होते हुए भी गई-गुज़री बातों को भूलकर, क्षमा की शरण लेकर प्रेम के साथ मिलने की उदारता दोनो में से किसी में नहीं आई।

आख़िरकार वकील साहब की तबीयत रोज़-रोज़ ज़्यादा बिगड़ने लगी। एक दिन उल्टी साँस चली, और भाई के सामने ही उनके प्राण देह-पिंजर से उड़ गए। उस समय टेकीला भाई ज़ोर से बोला—"ओ भाई! एक बार तो बोल!"

उस समय एक डॉक्टर रोगी की सेवा-शुश्रूषा में मौजूद थे। उन्होंने उचित उपालंभ देते हुए कहा—"भाई में बोलने की शक्ति थी, तब तो तुमने एक बार भी उनसे बातचीत करने की कोशिश नहीं की। अब पश्चात्ताप करने से क्या फ़ायदा?"

घर के कलह को इतनी हद तक ले जाना बुद्धिमान् पुरुषों का काम नहीं।

---

(१६)

जेरेमी टेलर का उपदेश

योरप का एक विद्वान् लेखक अपने अनुभव का परिणाम बताता है—"हम अपने सब दुःखों और संकटों का मूल कारण ख़ुद ही हैं। जंगल के कंद-मूल और झरने का जल, इन दोनों के सेवन से मेरी भूख और प्यास, दोनो शांत हो जाती हैं। इतना ही नहीं, विषय-लालसा, मद, मोह, लोभ, मत्सर, ईर्ष्या, असूया, इन सब वैरियों का भी पराभव हो जाता है, और इससे मैं शांति की गोद में माथा रखकर आराम से सोता हूँ।"

बात सच्ची है। जो मनुष्य प्रकृति-माता की गोद का आश्रय लेते हैं, उनको इतनी गहरी और आराम की नींद आती है, जितनी किसी को नहीं आती।

---

(२०)

वंकिमचंद्र चटर्जी का भूल-सुधार

बंगाल के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार और 'वंदे मातरम्' पत्र के प्रणेता वंकिमचंद्र चटर्जी ने किसी एक विषय पर पहले अपना मत प्रकट किया, और पीछे उसमें परिवर्तन कर दिया। इस तरह अभिप्राय बदलने के लिये कई लोग आप पर 'अस्थिर-चित्त' का लांछन लगाने लगे। इसके जवाब में

चटर्जी ने कहा—"जिसे कभी अपना मत बदलने की जरूरत नहीं पड़ती, वह महापुरुष है। जो मनुष्य यह जानते हुए भी कि मेरा पहले का मत भूल से भरा है, उसी में उलझा रहता है, वह कपटी है। इन दोनो प्रकार के मनुष्यों में से मैं महा-पुरुष तो हूँ नहीं, और कपटी होने की मेरी वृत्ति नहीं है।"

सच बात है। अपनी भूल सुधारना सत्पुरुषों का काम है। जो मनुष्य अपनी पहली बात ही पर अड़े रहते हैं, और उसे ही उल्टे-सीधे प्रमाणों से सिद्ध करने की कोशिश करते हैं, वे सचमुच कपट का आश्रय लेनेवाले कहलाते हैं।

---

(२१)

गेरीबाल्डी की मातृभक्ति

इटली को आज़ादी दिलानेवाले, नवयुवक-दल के नेता गेरीबाल्डी की माता बहुत ईश्वर-परायण थी। गेरीबाल्डी के चरित्र-संगठन में उसी का बड़ा भारी हाथ था। गेरी-बाल्डी अपने चरित्र में लिखते हैं—"मुझमें जो अलौ-किक साहस देखकर लोग आश्चर्य करते हैं, और युद्ध-क्षेत्र में मेरे पास दैवी शक्ति होने का अनुमान करते हैं, उसका मूल-कारण मेरा दैव बल पर विश्वास होना है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जब तक सतीत्व का आदर्श और देवी के अवतार-रूप मेरी माता मेरे प्राणों की रक्षा के लिये ईश्वर

की आराधना में मग्न रहेगी, तब तक मुझे अपने जीवन के लिये कुछ भी शंका नहीं।"

परिणाम यह हुआ कि युद्ध-क्षेत्र में इनके कान के पास से सन्-सन् करती हुई गोलियाँ जाने लगीं ; पर इनके एक भी नहीं लगती थी। जब-जब पत्थर के गोलों की तरह तोप के गोले इनके चारों तरफ आ पड़ते, तब-तब इनको ऐसा मालूम होता, मानो माता घुटने टेककर जगन्नियंता प्रभु से पुत्र के जीवन की रक्षा के लिये प्रार्थना कर रही है।

---

(२२)

कुंती का अपने पुत्रों को उपदेश

पांडवों की माता कुंती क्षात्रधर्म के विषय में बहुत दृढ़ थीं। क्षात्र धर्म के जो खास-खास नियम हैं, प्रसंग पड़ने पर अपने पुत्रों से उनका पालन कराए बिना वह रहती न थीं। समय-समय पर उन्होंने अपने पुत्रों से उपदेश देकर प्रशंसनीय कार्य कराए थे—(१) ब्राह्मण की रक्षा के लिये अपने पुत्र भीम को राक्षस के मुख में भेजा था। (२) कुरुक्षेत्र के महायुद्ध के पहले जब विदुर के घर में श्रीकृष्ण के दर्शन हुए, तब उनके साथ अपने पुत्रों को युद्ध में उत्साह दिलानेवाला संदेश भेजा था—"क्षत्रियाणी जिस समय के लिये संतान को जन्म देती है, वह समय आ पहुँचा है।"

(३) जब युद्ध पूरा हुआ, तब भी उन्होंने राजमाता का सुख भोगना या बारह वर्ष तक वन में रहकर आए हुए पुत्रों के साथ राजधानी में सुख से रहना पसंद नहीं किया, बल्कि वनवास देनेवाले अंधराजा धृतराष्ट्र और उनकी रानी की सेवा में अपना शेष जीवन बिताया। पांडवों के चरित्र में जो स्वार्थ-त्याग, परोपकार, कर्तव्य-परायणता और अंत में महाप्रस्थान की प्रवृत्ति आदि सद्गुण देखने में आते थे, उनका मुख्य कारण माता कुंती की ही शिक्षा थी।

---

(२३)

राजा प्रतापरुद्र का सत्याग्रह

श्रीचैतन्य महाप्रभु जब पुरुषोत्तम-क्षेत्र में विचरते थे, तब इनके सद्गुणों की बात सुनकर राजा प्रतापरुद्र के मन में भक्ति उत्पन्न हुई। परंतु कामिनी और कांचन का त्याग करनेवाले चैतन्यदेव को स्त्री-दर्शन जैसा निषिद्ध लगता था, वैसा ही सांसारिक सुख में लवलीन रहनेवाले महाराजा को देखना। इसीलिये जब राजा ने इनके दर्शन करने की इच्छा प्रकट की, तब चैतन्यदेव ने इनकार कर दिया, और कहा— "इनकार कर देने पर भी यदि राजा मुझसे मिलने आएगा, तो मैं इस क्षेत्र को छोड़कर दूसरी जगह चला जाऊँगा।"

राजा प्रतापरुद्र भी दृढ़ प्रतिज्ञावाला क्षत्रिय और महान्

भक्त था। बोला—"ठीक है। देखता हूँ, किसकी बात सच्ची होती है? मैं प्रभु चैतन्यदेव के पास जरूर जाऊँगा, और मुझे विश्वास है, वह मुझे निकालेंगे नहीं।"

राजा इसी बात की चिंता में रहा। चैतन्यदेव किस समय कैसी स्थिति में रहते हैं, इसकी खबर वह बराबर पाता रहा।

एक दिन की बात है। उस दिन चैतन्यदेव कीर्तन के समय प्रेमोन्मत्त अवस्था में हो गए थे। ऐसे ही समय राजा 'रास-पंचाध्यायी' का एक श्लोक गाता हुआ उनके पास जा पहुँचा। श्लोक का गान सुनकर चैतन्यदेव और भी मग्न हो गए। "वाह भाई! श्रीकृष्ण का कैसा मधुर नाम सुना रहे हो!" यह कहते-कहते उन्होंने राजा को दृढ़ आलिंगन करके छाती से लगा लिया।

---

(२४)

थियोडोरे पार्कर का पश्चात्ताप

थियोडोरे पार्कर बड़ा विद्वान् और दीर्घ दृष्टिवाला मनुष्य समझा जाता था, पर थोड़ी ही अवस्था में उसकी अकाल मृत्यु हो गई। इससे मौत के समय उसे बहुत ही पछतावा रहा। जब वह मृत्यु-शय्या पर पड़ा, तब उसके आखिरी उद्गार यह थे—

"हाय, मैंने शुरू से जीवन का रहस्य नहीं समझा! अगर मैं शुरू से ही जीवन का रहस्य समझ जाता, अथवा

किसी अच्छे ग्रंथ के पढ़ने या अनुभवी पुरुषों के वचन सुनने से मुझे यह मालूम हो जाता कि जीवन कैसे बिताना चाहिए, अभ्यास कैसे करना चाहिए, और कसरत कैसे करनी चाहिए, तो मेरा जीवन कितना सुखमय बन जाता ! पर अफसोस ! जल्दी ही मुझे ये बातें मालूम नहीं हुईं ।"

पार्कर के इस अंतिम पश्चात्ताप से जीवन सफल बनाने के लिये हमें शिक्षा लेनी चाहिए।

---

(२५)

मेज़िनी पर उसकी माता का प्रभाव

हमने बार-बार बताया है कि अच्छी माता का संतान पर प्रबल प्रभाव पड़ता है। इटाली के उद्धारक मेज़िनी की माता भी एक कार्य-दक्ष और प्रभु-परायण स्त्री थी। लाड़ लड़ाकर संतान को बिगाड़ देने की दुर्बलता जो अक्सर स्त्रियों में हुआ करती है, वह इसमें नहीं थी। जीवन के कष्ट बहादुरी और प्रसन्न चित्त से सहन करने की शिक्षा इसने अपने पुत्र को दी थी। योरप की उस समय की दशा का वास्तविक वर्णन अपनी संतानों के सामने करके उसने स्वदेश की दुर्दशा का भान उनको कराया था, और राज-कर्मचारियों तथा राजतंत्र के दोष बताते हुए देशोन्नति के भाव बचपन से ही संतान में उत्पन्न किए थे। निराशा के

समय इसने पुत्रों को धैर्य दिया और कर्तव्य में सतेज बनाया था।

सन् १८५२ में मेज़िनी की इस आदर्श माता का देहांत हो गया। माता का देहांत हो जाने से मेज़िनी को भारी आघात पहुँचा। इसके जीवन की यह अभिलाषा थी कि मैं इटाली को स्वतंत्र बनाने के बाद महान् विजय को कारण-स्वरूप जननी के चरण-कमलों में मस्तक रखकर कृतार्थ होऊँगा। पर मेज़िनी का यह मधुर स्वप्न सच्चा नहीं निकला, इसी का उसे शोक था; पर निराश न होते हुए यह माता के पवित्र संस्मरणों को याद करके नए जोश से काम करने में लगता था। वह लिखता है—"मेरी माता मुझे सदा ही अपने समीप मालूम होती है। पार्थिव शरीर में मेरे पास रहने की अपेक्षा वह और भी अधिक मेरे निकट जान पड़ती है। जिन कर्तव्यों का उसको भान हुआ था, और जिनके लिये उसने अपने जीवन में कार्य करना पसंद कर रक्खा था, उनकी पवित्रता का भान मुझे दिनोंदिन अधिकाधिक होता जाता है। अब इस संसार में जन्मभूमि के सिवा मेरे लिये दूसरी कोई माता नहीं। और, मेरी माता ने जैसा सच्चा प्रेम मेरे ऊपर रक्खा था, वैसा ही सच्चा प्रेम मैं इस जन्मभूमि के ऊपर दर्शाऊँगा।"

देखिए, मेज़िनी का माता के ऊपर कितना प्रेम था, कितनी श्रद्धा थी! इसी श्रद्धा और भक्ति के कारण वह गुप्त-

निवास में, माता की मृत्यु के बाद जब निराश हो गया था, तब भी उसे ऐसा मालूम हुआ था, मानो मेरी माता मेरे निकट आकर मुझे प्रेम-पूर्वक आश्वासन और प्रोत्साहन दे रही है।

वास्तव में सुमाताओं द्वारा ही सच्चे देश-भक्तों का निर्माण होता है।

---

(२६)

यादवचंद्र राय की अलौकिक क्षमा

बंगाल में साधु अघोरनाथ नाम के एक प्रसिद्ध ब्राह्मसमाजी उपदेशक हो गए हैं। यादवचंद्र इनके पिता थे। फ़ारसी और संस्कृत-भाषा के अच्छे विद्वान् होने के सिवा वह परम ईश्वर-भक्त पुरुष थे। जीव-दया उनमें बहुत थी। छोटे-से-छोटे जीव पर भी उन्हें दया आ जाती थी। पागल कुत्ता अगर काट खाय, तो भी उसे मारने का विचार न करें, ऐसे आप अहिंसावादी थे। वैद्यक-विद्या भी आप बहुत अच्छी जानते थे। रोग-शय्या पर पड़े हुए रोगी से कभी फ़ीस नहीं लेते थे। आर्थिक स्थिति आपकी अच्छी नहीं थी, तो भी आपका धर्म-भाव ऊँचे दर्जे का था।

एक दिन ऐसा हुआ कि चोर इनका छप्पर तोड़कर नीचे उतरा, और सारा घर ढूँढ़ा; पर ले जाने लायक़ कुछ भी चीज़ नज़र नहीं आई। चोर की खड़खड़ाहट से

यादवचंद्र जाग उठे। देखा, इतनी ज्यादा मेहनत करके चोर बेचारा खाली हाथ लौट रहा है। यह देखकर आपको दया आ गई। आपने अपने हाथ से हुक्का तैयार किया, और मीठे शब्दों में चोर से कहा—"भाई! तुमने इतना ज्यादा परिश्रम किया; पर कुछ भी नहीं मिला! जरा तंबाकू तो पीते जाओ।"

चोर बेचारा ठंडा हो गया, और शर्म के मारे नीचा माथा करके चला गया।

---

(२७)

व्यावहारिक ज्ञान की कमी

एक महान् पंडित अपने अभ्यास में बहुत निमग्न हो गए। इतने ही में एक छोटी-सी लड़की उनके पास आग लेने आई। पंडितजी ने कहा—"तू किस चीज पर आग ले जायगी?"

ऐसा कहकर पंडितजी आग ले जाने के लिये कोई पात्र लेने गए। इतने ही में उस लड़की ने अँगीठी से राख लेकर एक हाथ पर रक्खी, और दूसरे हाथ से उस पर कुछ अंगारे रक्खे। इतने ही में पंडितजी आ पहुँचे, और लड़की की ऐसी युक्ति देखकर पश्चात्ताप करने लगे। उन्होंने अपनी पुस्तक फेंक दी, और पछताते हुए कहा—"मैंने इतना पढ़ा;

पर ऐसी मामूली युक्ति भी मुझे नहीं सूझी ! यह कितने शर्म की बात है !"

असल में बुद्धि का पूरा-पूरा विकास हो, और व्यवहार में ज्ञान का सरलता से उपयोग हो सके, ऐसी ही शिक्षा विद्यार्थियों को देनी चाहिए।

---

(२८)

तीन प्रश्नों का एक ही उत्तर

एक मनुष्य ने एक फ़क़ीर से तीन सवाल किए—

(१)"प्रत्येक मनुष्य ईश्वर की सत्ता सर्वत्र बताता है; पर मैं उसे क्यों नहीं देख सकता ? वह कहाँ है, मुझे बताओ।"

(२)"मनुष्य को अपने पाप के लिये क्यों सज़ा मिलती है ? कारण, मनुष्य जो कुछ करता है, वह प्रभु की प्रेरणा ही से करता है।"

(३)"ईश्वर शैतान को नरकाग्नि में डालकर सज़ा देता है, यह कैसे मुमकिन है ? क्योंकि शैतान ख़ुद अग्नि-रूप है, फिर अग्नि का अग्नि के ऊपर क्या ज़ोर चल सकता है ?"

ये तीनो प्रश्न फ़क़ीर ने गंभीरता से सुन लिए, और ज़मीन से एक ढेला उठाकर सवाल करनेवाले के माथे में मारा। उसने इस बारे में क़ाज़ी के पास जाकर

फ़रियाद की। क़ाज़ी ने फ़क़ीर को बुलाया, और पूछा—"तुमने इस मनुष्य के क्यों ढेला मारा?" फ़क़ीर ने उत्तर दिया—"इसके पूछे हुए तीनो प्रश्नों का यही उत्तर है।"

क़ाज़ी ने पूछा—"किस तरह?"

फ़क़ीर बोला—"यह मनुष्य कहता है कि मेरे सिर में चोट लगी, तो चोट लगने से जो दुःख इसे हुआ हो, वह मुझे बताना चाहिए, जिससे मैं इसको ईश्वर बताऊँ (अर्थात् ईश्वर आंतरिक अनुभव द्वारा ही पहचाना जाता है)। दूसरे, मैंने जो कुछ किया, वह ईश्वर की प्रेरणा ही से किया है, तो फिर ईश्वर की प्रेरणा से किए हुए मेरे कार्य को यह अपराध क्यों मानता है? तीसरे, इसका शरीर मिट्टी का बना हुआ है; तो फिर मिट्टी का मिट्टी पर क्या असर हो सकता है?"

फ़क़ीर का मार्मिक उत्तर सुनकर प्रश्नकर्ता आश्चर्य करने लगा, और क़ाज़ी ने भी फ़क़ीर को निर्दोष ठहराकर छोड़ दिया।

---

(२६)

प्लेटो का विद्या-प्रेम

ग्रीस के महान् तत्त्ववेत्ता प्लेटो (उपनाम अफ़लातून) से एक मित्र ने पूछा—"तुम्हारे दिल में दूसरों को सिखाने की जितनी उमंग है, उतनी ही दूसरों से सीखने की भी है; परंतु इस तरह तुम कहाँ तक सीखते रहोगे?"

प्लेटो ने बड़ा ही मज़ेदार उत्तर दिया। कहा—"विशेष

ज्ञान प्राप्त करने में मुझे जहाँ तक शर्म मालूम न होगी, वहाँ तक !"

मित्र महाशय इस उत्तर को सुनकर चुप हो गए। वास्तव में सारा जीवन विद्या प्राप्त करने के लिये होता है। विद्या-प्राप्ति में लज्जा करना उत्तम पुरुषों का काम नहीं।

---

(३०)

मेज़िनी की सौंदर्य प्रियता

इटाली की राज्य-क्रांति के समाचार सुनते ही इटाली की ख़ातिर देश-निकाला पाया हुआ स्वदेश-भक्त मेज़िनी इँगलैंड से रोम जाने को निकला। मार्ग में आल्प्स की दुर्गम पर्वत-माला का प्राकृतिक सौंदर्य देखकर यह बहुत ही प्रसन्न हुआ। और, सेंट गोटहार्ट के शिखर के संबंध में इसने अपने एक मित्र को लिख भेजा—"यह दृश्य भव्य और प्रभुमय है। आल्प्स से मिले हुए इस सर्वोच्च शिखर की समतल भूमि पर बैठकर जिसने शांति का अनुभव नहीं किया, उसे यह भी मालूम नहीं होता कि कविता क्या है। आल्प्स-पर्वत के ऊपर तो नास्तिकता की पैदायश ही नहीं है।"

हमारे देश के तीर्थ-स्थानों को भी बड़ी-बड़ी नदियों के तट पर, निर्जन वनों में या ऊँचे-ऊँचे सुंदर पर्वतों पर इसी लिये रक्खा गया है कि प्रकृति के दर्शन द्वारा मनुष्य अपने

स्रष्टा प्रभु के अस्तित्व और असीम करुणा का अनुभव करे।

---

(३१)

प्रतापचंद्र राय की पक्की लगन

महाभारत का अँगरेज़ी में अनुवाद प्रकाशित करने का भारी काम बंगाल के एक दरिद्र विद्वान् प्रतापचंद्र राय ने अपने सिर पर लिया। आपके अलौकिक साहस और उद्यम के कारण ही यह कार्य आरंभ हुआ। अनेक राजा-महाराजाओं तथा सरकार का आश्रय भी आपको मिल गया। पर सभी की ऐसी धारणा थी कि महाभारत-जैसे बृहत् ग्रंथ का अनुवाद प्रकाशित करना छोटा काम नहीं है। प्रतापचंद्र से यह काम, और दी हुई रक़म व्यर्थ जायगी।

लेकिन प्रतापचंद्र ने उनकी यह धारणा भ्रांत धारणा साबित कर दी। आपने अपनी सारी शक्तियाँ इसी कार्य में लगाकर इस कठिन कार्य को पूरा कर दिखाया। चौरा-नवे खंड में यह ग्रंथ अश्वमेघ-पर्व तक प्रकाशित हुआ, इतने ही में प्रतापचंद्र राय की मृत्यु हो गई। मृत्यु-शय्या पर भी आपको 'महाभारत' की ही चिंता रही। आपने अपनी सुयोग्य पत्नी श्रीमती सुंदरी बाला से कहा—"मेरे श्राद्ध में कुछ भी खर्च मत करना, बल्कि तुम आधी भूखी

रहकर महाभारत को पूरा करना। इसी से मैं यह समझूँगा कि तुमने मेरे प्रति श्रद्धा प्रकट की है, और मेरा सच्चा श्राद्ध किया है। महाभारत समाप्त होगा, तभी मैं अपना श्राद्ध पूर्ण हुआ मानूँगा।"

सुंदरी बाला ने ऐसा ही किया, और एक वर्ष ही में यह सारा ग्रंथ छपकर प्रकाशित हो गया।

स्वजनों के अधूरे काम पूरे करना भी ऊँचे दर्जे का श्राद्ध है। जो महान् आत्माएँ मृत्यु के समय अपनी इच्छाएँ प्रकट कर जाती हैं, उन्हें जो पूरा करता है, वह भी सच-मुच महान् कहलाने योग्य है।

---

(३२)

स्लेड का हिंदू-धर्म स्वीकार करना

महात्मा गांधीजी की अनुयायिनी अँगरेज़-महिला कुमारी मैडलेन स्लेड (श्रीमती मीराबाई) हाल ही में खद्दर की सारी पहने हुए कलकत्ते की सड़कों पर एक राष्ट्रीय जुलूस की अग्रणी बनकर निकली थीं। जब गांधीजी ने क़ानून तोड़ने के लिये अहमदाबाद से अपनी सुप्रसिद्ध यात्रा प्रारंभ की थी, तब उन्होंने आश्रम की देख-भाल के लिये मीराबाई को ही आश्रम में छोड़ा था। यह कुछ वर्षों से इस 'विलक्षण उपनिवेश' (साबरमती-आश्रम) में रहती आ रही हैं, और सादगी का जीवन बिताती हुई महात्माजी की देख-रेख

में आत्मप्रतीति अथवा 'ईश्वर के प्रत्यक्ष दर्शन' की ओर ले जानेवाले उस पथ पर अग्रसर होने की चेष्टा करती रही हैं, जिस पर महात्माजी स्वयं चल रहे हैं।

पूर्व जीवन की कथा—कुमारी स्लेड के मत-परिवर्तन की कहानी बड़ी आश्चर्यजनक है। कुछ ही वर्ष पहले वह एक धनाढ्य रमणी थीं, जिनका नाम अँगरेज़ी तथा फ्रांसीसी-समाज में प्रायः आता था। वह सर एडमंड जॉन बारे स्लेड नाम के प्रसिद्ध ब्रिटिश नौ-सेनापति की कन्या थीं, और अपने विशेष समाज में अपना उपयुक्त स्थान ले सकें, इस दृष्टि से ही उनका पालन-पोषण किया गया था।

इसी समय गांधीजी के जादू का प्रभाव उन पर पड़ा। अभी तक उन्होंने इस महापुरुष की तरफ़ विशेष ध्यान नहीं दिया था। उन्होंने गांधीजी के संतजनोचित आदर्शों के बारे में जो कुछ पढ़ा था, और गांधीजी ने स्वयं जो कुछ लिखा था, उसे पढ़कर वह उनकी ओर आकृष्ट हुईं।

विगत महायुद्ध के बाद योरप की जो दुर्दशा हुई, उससे उनका मन उस ओर से फिर गया। उन्होंने सुदूर भारत-वर्ष में महात्मा गांधी के पास पत्र लिखा, और उनसे अपने आश्रम में भरती कर लेने के लिये साहस-पूर्वक प्रार्थना की। यथासमय गांधीजी ने उत्तर दिया—"आप आ सकती हैं, किंतु पहले आपको वे सब बातें त्याग देनी पड़ेंगी, जिनके

अनुसार अभी तक आप अपना जीवन बिता रही थीं। आपको अपने धन का, अपनी सामाजिक स्थिति का, अपने मित्रों और संबंधियों तक का मोह छोड़ना पड़ेगा।"

कुमारी यह सब करने को तैयार थीं, और उनके मित्रों के अनेक प्रयत्न करने पर भी वह योरप की ओर पीठ फेरकर चली गईं।

बड़ी प्रसन्नता के साथ उनका स्वागत किया गया। पहले वह परीक्षा के तौर पर एक वर्ष के लिये आश्रम में प्रविष्ट हुईं। अभी तक जैसा जीवन वह बिता रही थीं, अब उसके ठीक विपरीत रहन-सहन उन्होंने अख्तियार कर लिया।

गांधीजी के साथ—उनका यह जीवन उतना ही सादा था, जितना ग़रीब-से-ग़रीब हिंदू किसान का हो सकता है। योरप के तरह-तरह के फ़ैशनवाले कपड़ों के बदले अब उन्होंने आश्रम में ही चर्खे से कते हुए सूत का बना पहनावा ग्रहण किया। गांधीजी की तरह सीधा-सादा निरामिष भोजन वह भी करती थीं, और मिट्टी के फ़र्शवाली घास-फूस की एक छोटी झोपड़ी में रहती थीं।

बारह महीनों के इस सादे जीवन के बाद कुमारी स्लेड हिंदू बन गईं। अब उनका नाम श्रीमती मीराबाई रक्खा गया। वह गांधीजी के साथ काशी पहुँचीं, और वहाँ के विश्वनाथजी के मंदिर में भी गईं। इसके बाद मीराबाई हिंदुओं

के प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन तथा सादगी के साथ विविध विषय का मनन करने के लिये पुनः आश्रम में लौट आईं।

आराम और दौलत की ज़िंदगी बिताने के लिये लौट जाने की उन्होंने कभी लालसा नहीं प्रकट की। वस्तुतः उन्होंने तो कहा है—"इस महान् आत्मा के चरणों के पास मुझे उस अपूर्व शांति और सुख की प्राप्ति हुई है, जिसे मैं खोज रही थी।"

उन्होंने एक बार कहा था—"मेरा जीवन संपूर्णतया गांधी-जी के हाथ में है। अपने जीवन का शेष समय मैं किस तरह बिताऊँगी, इसका निर्णय करना बिलकुल गांधीजी के अधिकार की बात है।"

---

(२२)

न्यूटन का एक ग्वाले से पाया हुआ ज्ञान

न्यूटन प्रसिद्ध विद्वान् हो गया है। विज्ञान के बड़े-बड़े आविष्कार उसके आभारी हैं। एक बार वह घूमने निकला। इतने ही में भेड़ें चरानेवाला एक ग्वाला उसे सामने मिला। ग्वाले से उसने पूछा—"भाई! यहाँ से गाँव कितनी दूर है?" ग्वाले ने उत्तर दिया—"गाँव तो

बहुत दूर नहीं है. परंतु यदि तुम जल्दी-जल्दी पाँव उठाकर न जाओगे, तो तुम्हें बरसात में भीगना पड़ेगा।"

उस समय सूर्य का प्रकाश रास्ते पर पड़ रहा था। आकाश में बादलों का नामोनिशान नहीं था। इन बातों से न्यूटन ने ग्वाले के कहने पर विशेष ध्यान नहीं दिया, और धीरे-धीरे गाँव की तरफ़ जाने लगा।

इतने ही में एकाएक सूर्य का प्रकाश बंद हो गया, और आकाश बादलों से घिर गया। देखते-ही-देखते ज़ोर से वर्षा होने लगी, और ग्वाले के कहने के अनुसार न्यूटन भीग गया। इससे इस प्रसिद्ध विद्वान् को बड़ा आश्चर्य हुआ।

जब वर्षा बंद हो गई, तब उसने ग्वाले के पास जाकर पूछा—"भाई! वर्षा होने का ज़रा भी चिह्न नज़र नहीं आता था। तो भी तुमने कैसे जान लिया कि वर्षा जल्दी ही होगी?"

ग्वाले ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब न्यूटन ने उसके हाथ में एक गिन्नी रक्खी। सोने की गिन्नी से प्रसन्न होकर ग्वाले ने कहा—"उस काली भेड़ को देखो।" न्यूटन ने देखा, पर कुछ भी मालूम नहीं हुआ। तब आश्चर्य से पूछा—"वर्षा के साथ उस भेड़ का क्या संबंध है?"

ग्वाले ने उत्तर दिया—"यह जब रक्षा पाने का स्थान ढूँढ़ती है, या अपना माथा झाड़ियों में घुसेड़ती है, तब मैं समझता हूँ कि घड़ी-दो घड़ी में वर्षा अवश्य होगी।"

गाँव के साधारण मनुष्यों के पास भी अनुभव-जन्य ज्ञान

का खजाना भरा होता है। इसलिये, न्यूटन की तरह, उनके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

---

(३४)

अब्राहिम लिंकन और देश की उन्नति के उपाय

अब्राहिम लिंकन जब मित्रों के आग्रह से अमेरिका के इलिनोय परगने की व्यवस्थापिका सभा का सभासद बनने के लिये उम्मेदवार हुआ, तब उसने मतदाताओं की सभा के सामने अपना उद्देश्य इस प्रकार जाहिर किया—"प्रिय महाशयो! मेरा राजनीतिक मत संक्षिप्त और रुचिकर है। मैं चाहता हूँ, सभी विषयों में हमारे देश की आंतरिक उन्नति हो। इसके लिये मैं बैंकों की स्थापना करना चाहता हूँ, और विदेश से आनेवाले हर प्रकार के माल पर रक्षणशील जकात लगाने का मेरा अभिप्राय है। थोड़े ब्याज पर रुपए मिलने और बाहर की स्पर्धा से बचने से हमारे देश के ग़रीब किसानों और कारीगरों का रक्षण होगा, तथा देश की उन्नति होगी। इसके सिवा मैं कुछ नहीं चाहता। मेरी ये बातें अगर आपको पसंद हों, तो आप मेरे लिये मत दीजिए, मैं आपका उपकार मानूँगा। अगर आप मत न देंगे, तो जैसी दशा इस समय आपकी है, वैसी ही बनी रहेगी।"

हमारे देश में आजकल स्वराज्य-प्राप्ति के लिये घोर आंदो-

लन हो रहा है। परमात्मा की कृपा से उसमें अवश्य सफलता होगी। सच पूछा जाय, तो हमारे देश को समृद्धिशाली बनाने के लिये लिंकन के बताए हुए दो उपायों की बड़ी भारी जरूरत है। व्यवस्थापिका-सभा के सभासदों को इस पर अधिक ध्यान अवश्य देना चाहिए।

---

(३५)

फ़िलिप को एक बुढ़िया का उपदेश

मेसीडोनिया के राजा फ़िलिप के दरबार में एक वृद्ध स्त्री फ़रियाद करने आई। उस समय राजा राज-काज से निपट-कर और सभा बरख़ास्त करके उठने की तैयारी में थे। तो भी उन्होंने बुढ़िया से कहा—"अभी मुझे फ़ुरसत नहीं है।" बुढ़िया ने कहा—"तो फिर राजा होने के लिये भी फ़ुरसत नहीं है ?"

फ़िलिप बहुत देर तक यह उत्तर सुनकर चुपचाप बैठे रहे; क्योंकि वृद्धा के शब्द उनके हृदय में चुभ गए थे। उन्होंने वृद्धा का मुक़द्दमा सुनकर वाजिब फ़ैसला दिया। इतना ही नहीं, इसके बाद किसी रोज भी यह नहीं कहा कि मुझे फ़ुरसत नहीं है।

---

(३६)

दधीचि ऋषि का आत्मत्याग

एक समय वृत्रासुर के प्रताप से इंद्र स्वर्ग-भ्रष्ट हुआ, और सभी देवता वृत्रासुर के अत्याचार से दुखी होने लगे। वृत्रासुर ने कठिन तप करके ब्रह्मा से ऐसा वरदान पाया था कि लोहा, या दूसरी कोई धातु, लकड़ी, बाँस आदि किसी भी वस्तु से बनाए हुए हथियार से तेरा वध नहीं होगा।

निदान, देवगुरु बृहस्पति के उपदेश से इंद्र उग्रतपा दधीचि मुनि की शरण में गया, और प्रार्थना की—"आप मुझे अपनी हड्डियाँ दीजिए, मैं वृत्रासुर को मारने के लिये उसका अस्त्र बनाऊँगा!"

एक बार इसी इंद्र ने दधीचि मुनि की तपस्या भंग करके उनके साथ शत्रुता का बर्ताव किया था; परंतु विशाल हृदय के पुरुष अपनी शत्रुता का ध्यान ऐसे परोपकार के समय नहीं करते। अतएव सभी देवताओं का कल्याण करने के उद्देश्य से आत्मत्यागी दधीचि मुनि ने प्रसन्नता-पूर्वक प्राण त्याग करके अपनी अस्थियाँ इंद्र को दे दीं! इन अस्थियों का वज्र बनाकर इंद्र ने वृत्रासुर का वध किया, और स्वर्ग को उपद्रव से बचाया।

धन्य है मुनिराज दधीचि को, जिन्होंने प्राणों की परवा न करते हुए दूसरे का हित-साधन किया। इसी अपूर्व आत्मत्याग की बदौलत आपका नाम युगों तक अमर रहेगा।

---

(३७)

स्त्रियों का उत्तम भूषण

योरप और अमेरिका आदि देशों की स्त्रियाँ फ़ैशन और सुंदरता दिखाने के लिये अपने गालों पर रंग लगाती हैं। इनका अनुकरण हमारे देश के बड़े-बड़े नगरों की फ़ैशनेबिल स्त्रियाँ भी करती हैं।

सिकंदर बादशाह के गुरु एरिस्टोटल के 'पीथिया' नाम की एक कन्या थी। वह बहुत ही विदुषी और चतुर थी। उससे एक बार किसी ने पूछा—"गाल पर लगाने के लिये सबसे उत्तम रंग कौन-सा है ?"

विदुषी पीथिया ने उत्तर दिया—"लज्जा।"

वास्तव में लज्जा ही स्त्रियों का सर्वोत्तम भूषण है।

---

(३८)

नौशेरवाँ का न्याय

ईरान का प्रसिद्ध बादशाह नौशेरवाँ बड़ा न्यायी था। एक दिन वह शिकार खेलने गया। वहाँ शिकार के जानवर का मांस भूनकर खाते समय उसे थोड़े नमक की जरूरत हुई। उसने अपने नौकर को आज्ञा दी कि पास के गाँव से नमक ले आ। पर साथ ही यह भी बता दिया कि देख, उस नमक की वाजिब क़ीमत देते आना।

नौकर ने कहा—"हुज़ूर ! ऐसी मामूली चीज़ की क़ीमत देने

के लिये आप इतनी चिंता क्यों कर रहे हैं ? देश के राजा को अगर थोड़ा-सा नमक प्रजा दे देगी, तो क्या हो जायगा ? राजा की इज्जत क़ायम रखनी चाहिए।"

नौशेरवाँ ने कहा—"इतनी-सी बात से तो राई का पर्वत हो जाय। अगर आज मैं किसी वृक्ष का एक-आध फल तोड़ लूँ, तो मेरे सिपाही और नौकर उस पेड़ पर फल ही नहीं रहने देंगे। इतना ही नहीं, अंत में उस पेड़ ही को अपने ईंधन के लिये काट डालेंगे। यह कितना अन्याय होगा ? अन्याय करने में राजा की इज्जत नहीं बनी रहती।"

नौशेरवाँ ऐसा ही न्यायी था। उसके न्याय की बातें आज भी सर्वत्र फैल रही हैं। उनसे हमारे राजा-महाराजाओं को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

---

(३६)

स्त्रियों के नीरोग रहने के उपाय

गोगीपाल्ही स्त्रियों का बहुत हित चाहनेवाले थे। एक बार उन्होंने स्त्रियों का हित करने के लिये इकट्ठी हुई सभा में संदेश लिख भेजा—"अच्छे घराने की महिलाएँ अधिकतर बीमार रहती हैं। इसका कारण यह है कि वे जितना चाहिए उतना काम नहीं करतीं। स्थिति अच्छी होने से घर के काम-काज में परिश्रम पड़े, ऐसा काम करने की उनको जरूरत ही

नहीं पड़ती। इसलिये अगर वे परोपकार-व्रत में लीन होकर दुखियों की आवश्यकताएँ पूरी करने और उनकी संतानों को शिक्षा देने का कार्य करें, तो उनका शरीर और मन सदा नीराग रहेगा। सच्चे हृदय से सत्कर्म में परिश्रम करना और ईश्वर की आज्ञा पालना, दोनो एक ही बात है। जो मनुष्य प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन करके केवल अपने को क्षणिक तृप्ति देनेवाले ऐशोआराम में जीवन बिताते हैं. वे ईश्वर का नियम भंग करने के बड़े भारी गुनहगार होते हैं, और मानसिक सुख तथा शारीरिक आरोग्य, दोनो से वंचित रहते हैं।"

हमारे देश के धनवान् घरों की स्त्रियों को, जो अपने घर का काम-काज करना हेय समझती हैं, गेरीबाल्डो के इस उपदेश से काफ़ी शिक्षा लेनी चाहिए।

---

(४०)

श्रीरामकृष्ण परमहंस का त्याग

श्रीरामकृष्ण परमहंस को उनके भक्त माथुर बाबू ने एक क़ीमती वस्त्र लाकर दिया। परमहंस उस वस्त्र को धारण करके ध्यान करने बैठ गए।

ध्यान समाप्त होने के बाद आप अपने इष्टदेव को प्रणाम करने जा रहे थे, इतने ही में विचार आया कि प्रणाम करते समय वस्त्र में धूल लग जायगी! यह विचार

आते ही आपने उस वस्त्र को तुरंत निकाल फेंका, और फिर स्वस्थ चित्त से इष्टदेवता को प्रणाम किया।

---

(४१)

पोस्टकार्ड किसने चलाया ?

आठ बरस पहले की बात है कि पत्र-व्यवहार के लिये लोगों को पहली बार पोस्टकार्ड मिला। सेंट मार्टिंसलेग्रेंड में पत्र-व्यवहार के इस नए साधन के नमूने प्राप्त करने के लिये बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई, और भीड़ का प्रबंध करने के लिये पुलिस की आवश्यकता हुई।

पोस्टकार्ड की प्रथा चलानेवाले डॉक्टर एमेनुएल हमीन थे। आपका संबंध विएना की मिलेटरी एकाडेमी से था। आपने २६ जनवरी, १८६६ को अपना यह विचार प्रकट किया कि पत्र-व्यवहार के लिये पोस्टकार्ड का चलन भी शुरू होना चाहिए। इसी तरह का प्रस्ताव १८६५ में, कार्लसरूहे में, जर्मन पोस्टल-यूनियन के सामने किया गया था।

हमीन ने भी पोस्टकार्ड चलाने का प्रस्ताव किया था, और आस्ट्रिया के डाक विभाग के अधिकारियों ने यह विचार पसंद करके पहली ऑक्टोबर, १८६६ को पोस्टकार्ड निकाल दिया। इनमें से बहुत-से कार्ड इँगलैंड आए, और डाक-विभाग ने तुरंत ही नकल करने का निश्चय किया, और आस्ट्रिया से निकलने के ठीक एक साल बाद इँगलैंड में

पहली ऑक्टोबर, १८७० को प्रथम बार पोस्टकार्ड का वितरण हुआ।

---

(४२)

शिवाजी का पर-स्त्री-त्याग

छत्रपति शिवाजी ने जब कल्याण लूटा, तब आपके सैनिकों ने लूट मचाते हुए एक सुंदर स्त्री पकड़कर आपके सामने हाजिर की, और प्रार्थना की कि इस स्त्री को आप अपनी उपपत्नी के तौर पर रक्खें। उस समय शिवाजी महाराज ने अपने सैनिकों से कहा—"अगर यह मेरी माता होती, तो मैं भी ऐसा ही सुंदर होता। सुंदरता देखकर मनुष्य को अपनी ज्ञान-बुद्धि नहीं खो बैठना चाहिए।"

ऐसा कहकर महाराज शिवाजी ने उस स्त्री के पति का पता लगवाया, और पता लगने पर उसे उसके पति के पास भेज दिया।

---

(४३)

फ्लेक्समैन को अपनी पत्नी की अपूर्व सहायता

योरप में जोश्युआ रेनाल्ड्स एक प्रसिद्ध चित्रकार और कला-विधायक हो गया है। यह जीवन-भर कुँवारा रहा।

इसका ख़याल था कि किसी भी विद्या में प्रवीणता प्राप्त करनेवाले को विवाह नहीं करना चाहिए।

इसका एक मित्र था—फ्लेक्समैन शिल्पकार। यह विवाह करके थोड़े दिनों में रेनाल्ड्स से मिलने आया। उससे मिलते ही इस महान् चित्रकार ने कहा—"फ्लेक्समैन! मैंने सुना है, तुमने विवाह किया है! यदि यह बात सत्य हो, तो मेहरबान, अब आप शिल्पकार नहीं रहे!"

कला के विषय में सत्ताधारी के समान गिने जानेवाले एक आचार्य के मुख से ऐसे उद्‌गार सुनकर जवान फ्लेक्समैन की निराशा का पार नहीं रहा। उसकी मुख-मुद्रा म्लान हो गई। वह घर गया, और अपनी पत्नी के पास जा बैठा। उसका कोमल हाथ अपने हाथ में लेकर कहने लगा—"एन! शिल्पकार के नाम से अब मेरा सत्यानास हो चुका है।"

एन ने प्रेम-पूर्वक कहा—'प्यारे! क्या हुआ? मुझसे कहिए। किसने आपका सत्यानास कर दिया?"

पति बोला—"मेरा सत्यानास देवालय में हुआ है, और एन नाम की स्त्री ने किया है।"

यह कहकर शिल्पकार ने जोश्युआ रेनाल्ड्स की मुलाक़ात का हाल अपनी स्त्री को सुनाया, और कहा—"आचार्य रेनाल्ड्स का अभिप्राय ऐसा है कि श्रेष्ठता संपादन करनेवाले विद्यार्थी को अपनी सारी शक्तियाँ अपनी विद्या और कला के पीछे लगा देनी चाहिए। बिस्तर से उठने के बाद

से सोने तक उसको एकाग्रचित्त से इसी काम में लगे रहना चाहिए। और, एक मनुष्य जब तक रोम और फ्लॉरेंस आदि नगरों में खुद जाकर राफेल, माइकेल, एँजेल और अन्य चित्रकारों की कृतियों का अभ्यास न करे। तब तक वह अच्छा शिल्पकार या चित्रकार कभी नहीं बन सकता। मेरी इच्छा भी एक महान् चित्रकार होने की थी।"

पत्नी ने स्वामी के हृदय की गहरी निराशा परखकर उसको सांत्वना देने के लिये कहा—"प्यारे! तुम्हारी यह इच्छा पूरी होगी। आप अवश्य ही एक महान् शिल्पकार बनेंगे, और इसके लिये रोम आदि नगरों में अवश्य प्रवास करना पड़ेगा, तो वह भी आप करेंगे।"

फ्लेक्समैन ने प्रश्न किया—"पर यह किस तरह होगा? पास पूँजी तो है ही नहीं!"

साहसी पत्नी ने उत्तर दिया—"काम करो, और कमखर्ची से चलो। मैं आपकी गृहस्थी कमखर्ची से चलाऊँगी, और जो पैसा इकट्ठा होगा, उससे आपको रोम-देश भेजूँगी।"

इसके बाद पाँच वर्ष तक इन स्नेही दंपती ने कमखर्ची से गृहस्थाश्रम चलाया, और उसके परिणाम से फ्लेक्समैन रोम जाकर अपनी अभिलाषा सफल कर आया।

इसके पश्चात् पत्नी की सहायता की कृतज्ञता दिखाने के लिये इसने अपने हाथ से बनाए हुए चित्रों की एक पुस्तक पत्नी को भेंट की।

फ्लेक्समैन की स्त्री ने अपने वर्ताव से साबित कर दिया कि योग्य पत्नी अपने पति की महत्त्वाकांक्षा पूरी करने में बाधक नहीं; बल्कि साधक होती है। अतएव इसके उदाहरण से हमारी ललनाओं को शिक्षा लेनी चाहिए।

---

(४४)

एक मूर सैनिक का निडर जवाब

योरप के महायुद्ध में अलजीरिया के मूर सिपाहियों ने सन् १६१४ ई० में बहुत साहस दिखाया था। आरगान के एक युद्ध में शत्रुओं की गोला-बारी से इनके सौ में से नब्बे आदमी मारे गए थे। तो भी ये लोग पीछे नहीं हटे, और अंत में जर्मनों की संगीनों की मार से इनका जत्था टूट गया। इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए अलजीरिया के फ़्रेंच गवर्नर ने एक राजभक्त और फ्रेंच-भाषा जाननेवाले मूर सैनिक से पूछा—"यदि जर्मन लोग किसी तरह अलजीरिया में प्रवेश करें, तो तुम क्या करो?"

गवर्नर साहब को ऐसी आशा थी कि यह मूर ऐसा कहेगा कि आबाल-वृद्ध-वनिता, सभी मूर सिपाहियों की तरह फ़्रांस की मान-मर्यादा बचाने के लिये लड़ेंगे। परंतु मूर सैनिक चुप रहा। गवर्नर ने समझा, शायद इसे फ़्रांस के विरोधी दल की खबर होगी, इसलिये उसने कहा—"जो

थोड़े फूल तोड़ देने को कहा। परमहंस ने तुरंत उनकी आज्ञा माथे पर चढ़ाकर जुही के थोड़े फूल तोड़ दिए।

इस घटना के थोड़े दिनों बाद परमहंस बीमार हुए, और बीमारी के इस सिलसिले में डॉक्टर साहब को उनके दर्शन करने का मौक़ा मिला। उस समय वह परमहंस को देखकर बहुत ही आश्चर्य-चकित हुए, और कहने लगे—'हाय! मैंने कैसा ग़ज़ब कर डाला! मेरी बुद्धि कैसी मारी गई थी! इनसे तो मैंने माली समझकर फूल तोड़ने को कहा था!"

अपनी भूल का पश्चात्ताप करना ही मनुष्य की विशेषता है।

---

(४७)

राजा राममोहन राय की स्त्री-जाति के प्रति श्रद्धा

राजा राममोहन राय स्वतंत्र रूप से धर्म-विचार प्रकट करने के लिये सोलह वर्ष की अवस्था में देश छोड़कर हिमालय की तरफ़ चले गए, और वहाँ से तिब्बत गए। तिब्बत-निवासी वहाँ के "लामा" उपाधिधारी एक जीवित मनुष्य को इस विशाल ब्रह्मांड का उत्पन्नकर्त्ता मानते हैं। जब लामा की मृत्यु हो जाती है, तो जिस लड़के में उसके खास-खास लक्षण दिखाई देते हैं, उसे मृत लामा की जगह बैठाते हैं। उनका विश्वास है, लामा एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है।

इस तरह तिब्बत में अवतार-वाद परा काष्ठा को पहुँचा

हुआ है। जिस राममोहन राय ने मूर्तिपूजा का विरोध करके पिता का घर छोड़ा था, वह भला ऐसे अवतार-वाद को कैसे सहन कर सकते थे? आखिरकार उन्होंने इस बंधु-विहीन देश में निर्भयता के साथ इस मत के विरुद्ध व्याख्यान देना शुरू किया। नतीजा यह हुआ कि उस देश के पुरुष इस खंडन के कारण उन पर अतिशय क्रोधित हुए, और उनकी अच्छी तरह ख़बर लेने को तैयार हो गए। पर तिब्बत की कोमल-हृदया स्त्रियाँ इन पर विशेष स्नेह रखती थीं। उन्होंने इनको धीरज बँधाया, और सब आपत्तियों से बचाया। इस गुण के कारण राममोहन राय हमेशा के लिये नारी-जाति के पक्षपाती हो गए। अपनी प्रकाशित पुस्तकों में, मित्रवर्ग के सामने, देश और परदेश में आप सदा नारी-चरित्र की महत्ता का कीर्तन करने लगे। सचमुच तिब्बत की रमणियों ने अपने सद्व्यवहार से इनके तरुण हृदय में नारी-भक्ति का बीज बो दिया था। इनका जीवन-चरित लिखनेवाली कुमारी कारपेंटर लिखती है—"राममोहन राय का सुकोमल और स्नेह-पूर्ण हृदय चालीस वर्ष बाद भी अत्यंत आग्रह के साथ उस समय की सब घटनाओं का स्मरण करता था।" राममोहन राय ख़ुद कह गए हैं—"तिब्बत-वासी रमणियों के स्नेह-पूर्ण व्यवहार के कारण मैं नारी जाति के प्रति हमेशा श्रद्धा और कृतज्ञता का अनुभव करता हूँ।"

---

(४८)

राजा राममोहन राय का सती-दाह मिटाना

महापुरुषों के जीवन-चरित पढ़ने से मालूम होता है कि एकाध साधारण घटना घटने से ही उनके जीवन में बड़ा भारी फेरफार हो जाता है। विधाता के निर्देश से ऐसी साधारण घटनाओं से उनको नवीन सत्य और कर्तव्य-मार्ग मालूम हो जाता है। हम लोग प्रतिदिन हजारों मुर्दों को श्मशान जाते देखते हैं, पर हमारे ऊपर कुछ भी असर नहीं होता। परंतु कपिलवस्तु के राजकुमार ने इसी मुर्दे को देखकर राजसिंहासन त्यागकर संन्यास ग्रहण कर लिया था। मार्टिन लूथर, थियोडोरे पार्कर, दयानंद सरस्वती आदि महात्माओं के चरित्रों में ऐसे ही किसी सामान्य प्रसंग से महान् परिवर्तन हुआ था। आज भी उनके चरित्र इस बात के उदाहरण हैं।

राजा राममोहन राय के जीवन में भी एक ऐसा ही प्रसंग आया था। उस समय मृत पति के साथ उसकी विधवा पत्नी को सती कर देने का रिवाज जोरों पर था। कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने उस समय चिता में जलती हुई सती को मरते न देखा हो ! हजारों ही लोग देखते थे; पर राममोहन राय ने अपने भाई जगमोहन की स्त्री को मृत पति के साथ चिता पर चढ़ती देखकर प्रतिज्ञा की कि जब तक इस

देह में जीव है, तब तक इस भयंकर प्रथा को बंद कराने का तन, मन और धन से प्रयत्न करूँगा।

इस प्रतिज्ञा का राममोहन राय ने पालन भी किया। आपने व्याख्यान देकर, लेख लिखकर तथा सरकार में अर्जियाँ देकर इस रिवाज को बंद कराया। सन् १८११ ई० में आपकी भाभी अर्थात् जगमोहन की स्त्री सती हुई थीं। उस दिन से बराबर आप इस प्रथा को मिटाने की कोशिश कर रहे थे। आपकी यह कोशिश सन् १८२९ में सफल हुई। इस वर्ष की चौथी दिसंबर को लॉर्ड विलियम बेंटिक नाम के गवर्नर जनरल ने हुक्म निकालकर सती-दाह-प्रथा का भारतवर्ष से निवारण कर दिया।

हमारे यहाँ अधिकांश लोग जानते हैं कि सती होना विलियम बेंटिक ने बंद किया, पर असल में यह बात नहीं है। इस आंदोलन का मुख्य यश तो हमारे देश के सुधारक बंधु राममोहन राय ही को है।

---

(४६)

राजा और रानी में पति-पत्नी का संबंध

इँगलैंड के राजा दूसरे जेम्स की कन्या मेरी हालैंड के प्रिंस विलियम ऑफ् ऑरेंज की पत्नी थी। दूसरे जेम्स को पद-भ्रष्ट करने के बाद यह मेरी हालैंड से आकर इँगलैंड की रानी बनी। उस समय एक प्रतिष्ठित पद की रमणी ने रानी

मेरी से पूछा—"अब तो तुम दोनो के पति-पत्नी के संबंध के साथ राजा और प्रजा का संबंध भी जुड़ गया है। अब संसार किस तरह चलेगा ?"

रानी मेरी ने उस समय स्वामी को अपने पास बुलाकर उनके सामने यह प्रश्न रक्खा और कहा—"ईसा की दस आज्ञाओं में से सब बातों में स्वामी के वश में रहने की आज्ञा का मैं पालन करूँगी, और उन्हीं दस आज्ञाओं में से पत्नी को चाहने की आज्ञा का प्रति पालन मेरे स्वामी करेंगे। इसलिये इसमें किसी प्रकार का झगड़ा नहीं होगा, और किसी प्रकार की नई व्यवस्था भी नहीं करनी पड़ेगी।"

---

(५०)

सिकंदर का प्रजा के साथ अच्छा बर्ताव

बड़े सिकंदर बादशाह से किसी ने पूछा—"आपने इतने सब देशों पर किस तरह विजय प्राप्त की ? आपके पहले अनेक बादशाह उम्र में बड़े और धन-बल में अधिक हो गए हैं; परंतु वे भी आपकी तरह जीती हुई प्रजा को शांत नहीं रख सके ?"

सिकंदर ने उत्तर दिया—"ईश्वर की कृपा से मैंने जिन-जिन देशों पर विजय प्राप्त की है, वहाँ की प्रजा को मैंने कर के भार से या दूसरी किसी तरह तकलीफ़ नहीं पहुँचाई; बल्कि उसे पहले की अपेक्षा अच्छी स्थिति में रखने का

प्रयत्न किया है, और कर रहा हूँ। अगर ध्यान कारण न होता, तो मैं इनके राजवंश का भी लोप नहीं करता। यदि मैं ऐसा न करूं, तो मुझे कोई भी उदारचेता न कहे, और मेरे वश में भी न हो। असल बात तो यह है कि अगर मैं अपना नाम क़ायम रखना चाहता हूँ, तो मुझे चाहिए कि मैं अगले राजाओं के गौरव का लोप न करूँ।"

---

(५१)

पंडित का आशीर्वाद और नर्तकी का विश्वास

बंगाल में गोबरडांगा नाम का एक गाँव है। एक बार वहाँ के प्रसिद्ध जमींदार शारदाप्रसन्न मुखोपाध्याय की हवेली में कलकत्ते की किसी प्रसिद्ध नर्तकी का कीर्तन हुआ। दर्शकों में इच्छापुर गाँव के कुछ भाले पंडित भी मौजूद थे। नर्तकी कृष्ण-भक्ति के मधुर गीत गा रही थी। नाचते-नाचते उसका पाँव एक पंडित के शरीर से छू गया, पर नर्तकी ने घबराकर पश्चात्ताप नहीं किया, और उन पंडित के चरणों की रज भी नहीं ली। इस घटना से सब पंडित विस्मित होकर, वहाँ से उठकर बाहर चले गए। बाहर जाकर एक ने कहा—'यह नर्तकी तो वेश्या मालूम होती है।" दूसरे ने कहा—'क्या ऐसा हो सकता है? ऐसी सुंदरी और कृष्ण-प्रेमी स्त्री क्या कभी वेश्या हो सकती है?"

इस तरह कितना ही वाद-विवाद होने के बाद उन्होंने शारदाप्रसन्न बाबू को बुलाया। एक पंडित ने उनसे कहा— "यह गानेवाली अगर वेश्या न होती, तो तर्कपंचानन भाई के शरीर में पाँव लग जाने पर उनके चरणों की रज क्यों न माथे पर चढ़ाती ?"

शारदा बाबू हाज़िरजवाब थे। उन्होंने फ़ौरन् जवाब दिया—"उस समय नाचनेवाली श्रीकृष्ण के प्रेम में मस्त हो रही थी, और बाहरी ज्ञान से शून्य थी। ऐसी दशा में आपके चरणों की रज वह किस तरह ले सकती थी ?"

ऐसा कहकर वह फ़ौरन् मजलिस में गए, और नर्तकी से कहा—"पंडितजी से माफ़ी माँगकर उनके चरणों की रज माथे पर चढ़ा।" नर्तकी ने फ़ौरन् इस आज्ञा का पालन किया। भोले पंडितजी ने तुरंत आशीर्वाद दिया—"सती सावित्री जैसी होना।"

यह आशीर्वाद सुनकर सब लोग हँसे; पर नर्तकी को विश्वास हो गया कि यह जन्म तो दुराचार में बिताया, लेकिन दूसरे जन्म में पवित्र और सरल स्वभाव के पंडित-जी का आशीर्वाद अवश्य फलेगा। आशीर्वाद माथे पर चढ़ाकर वह रो पड़ी। क्योंकि चाहे जैसी अधम दशा को पहुँच जाने पर भी आर्य-रमणी का आदर्श सीता और सावित्री ही हैं।

---

(५२)

धर्मवीर

आजकल हमारे देश में सत्याग्रहियों पर जिस तरह पुलिस लाठियों की वर्षा करती है, और जिस तरह वे जेलों में ठूँसे जा रहे हैं, तथा वहाँ वे लोग जिस वीरता और धीरता के साथ अनशन-व्रत करते हुए अपने अटूट आत्म-बल, संयम और कष्टसहिष्णुता का परिचय देते हैं, ऐसा ही हाल, बल्कि इससे भी भयंकर हाल एक बार रोम-साम्राज्य में हुआ था। वहाँ बलवा मचाने के संदेह से ईसाइयों पर अत्यंत जुल्म किया गया था। जिस समय इन पर यह जुल्म किया जाता था, और इन्हें अग्नि में जला दिया जाता था, तथा चीरकर खा जानेवाले जानवरों के सामने डाल दिया जाता था, उस समय इनके धैर्य को देखकर बड़े-बड़े धैर्यवान् चकित हो जाते थे। कितने ही कैदियों का धैर्य और उदारता देखकर तो क़ैदख़ाने का एक पहरेदार सैनिक रोने लग गया था। उसका रोना देखकर एक ईसाई क़ैदी ने कहा—"भाई! तू अपने बादशाह के लिये युद्ध में मौत का आलिंगन करने के लिये सदा अवि-चल चित्त से तैयार रहता है, और हम विश्व-ब्रह्मांड के राजा के दास हैं। उसकी जय-घोषणा करते-करते आनंद-पूर्वक हम इस शरीर का त्याग करेंगे। इसमें तुझे विचित्रता क्यों मालूम होती है?"

धन्य है धर्मवीर ! सचमुच धर्मवीर ऐसे ही होते हैं।

---

(५३)

नौशेरवाँ और सभा-चतुर मनुष्य

पुराने ज़माने में ईरान के लोग बड़े वाक्-चतुर होते थे। ईरानी साहित्य में ऐसी कितनी ही कथाएँ मिलती हैं. जहाँ एक चतुर के वाक्य ने अद्भुत काम कर दिखाए हैं। बड़े-बड़े पारितोपिक ही न मिलते थे, बहुधा एक वाक्य की बदौलत उच्च पद प्राप्त हो जाते थे, जागीरें मिल जाती थीं, संकटों से विमोचन हो जाता था, यहाँ तक कि सिर पर खेलती हुई मृत्यु संजीवनी के रूप में परिणत हो जाती थी। उस समय के अनुत्तरदायी नरेश बात-बात में जामे से बाहर हो जाते थे, दरबारियों को जान नित्य सूली पर टँगी रहती थी। ऐसी अवस्था में बहुधा वाक्य-चातुरी ही उनके आड़े आती थी।

नौशेरवाँ अपनी न्यायशीलता के लिये आज तक अमर है। एक बार वह राज-भवन मे बैठा था। दरवान ने आकर सूचना दी—"एक ग़रीब आदमी हुज़ूर की खिदमत में हाज़िर होने की आज्ञा माँगता है।" नौशेरवाँ अमीरों से बहुत कम मिलता था, किंतु ग़रीबों के लिये उसके राजभवन के द्वार सदा खुले रहते थे। तुरंत हुक्म दिया कि उस आदमी को हाज़िर

करो। एक क्षण में वह आदमी उसके सन्मुख आया, और अदब से सलाम करके खड़ा हो गया। बादशाह ने देखा, तो उसकी वेष-भूषा किसी शरीफ़ आदमी की-सी थी। रुष्ट होकर पूछा—"तुम कौन हो, और कहाँ से आए हो?"

"मैं अरब का एक रईस हूँ।"

"तुमने तो अभी मेरे दरबान से कहा था कि मैं ग़रीब आदमी हूँ?"

"जहाँपनाह, यह ठीक है। उस वक़्त मैं बहुत ग़रीब और अदना आदमी था, लेकिन हुज़ूर की ख़िदमत में पहुँचकर अब मैं ग़रीब नहीं रहा। अब बड़ा-से-बड़ा रईस भी मेरी बराबरी नहीं कर सकता।"

नौशेरवाँ इस सभा-चातुरी पर मुग्ध हो गया, और हुक्म दिया कि इसे ख़िलत और इनाम दिया जाय।

---

(५९)

नौशेरवाँ और बावरची

एक बार नौशेरवाँ भोजन कर रहा था, तब बावरची से थोड़ा-सा शोरबा उसके वस्त्र पर छलक पड़ा। नौशेरवाँ की त्योरियाँ चढ़ गईं, कोप से ओंठ चबाने लगा। बावरची ने यह देखा, तो प्याले का बाक़ी शोरबा भी बादशाह के वस्त्रों पर उँडेल दिया। बादशाह का क्रोध विस्मय में परिणत हो गया।

पूछा—"तूने जान-बूझकर क्यों यह शरारत की ?" बावरची ने उत्तर दिया—"जहाँपनाह, आपका कोप देखकर मैं समझ गया कि अब मेरी जान न बचेगी। लेकिन फौरन् मुझे यह खयाल आया कि लोग कहेंगे, आप सिर्फ जरा-सा शोरबा अपने कपड़ों पर गिर जाने से इतने खफा हुए कि एक आदमी की जान ले ली, और इससे आपकी बदनामी होती। लोग आपको अन्यायी कहते। इसलिये मैंने जान-बूझकर हुजूर के कपड़ों पर शोरबा गिरा दिया कि दुनिया मुझी को अपराधी समझे; और आपके सिर से अन्याय और निर्दयता का आक्षेप उठ जाय।"

नौशेरवाँ हँस पड़ा, और बावरची को अभय प्रदान किया।

---

(५५)

खुसरो और मछुए की वाक्-चातुरी

बादशाह खुसरो परवेज के पास एक बार एक मछुआ एक बहुत बड़ी मछली लाया। बादशाह ने उतनी बड़ी मछली पहले न देखी थी। खुश होकर उसे तुरंत आठ हजार मुहरें इनाम दीं। संयोग से मछुए के हाथ से एक मुहर जमीन पर गिर पड़ी। उसने झुककर उसे उठा लिया। बादशाह की प्रेमिका शीरीं भी वहीं बैठी थी। उसने बादशाह के कान में कहा—कितना लालची आदमी है कि इतने रुपए पाकर

भी संतुष्ट न हुआ, गिरी हुई मुहर भी उठा ली। ऐसा कमीना आदमी इतने बड़े इनाम के योग्य नहीं।" ख़ुसरो ने फ़ौरन् मछुए को बुलाया, और कहा—"क्या आठ हज़ार मुहरें काफ़ी न थीं; जो तू एक मुहर उठाने के लिये इतना बेक़रार हो गया। इस लालच की तुझे क्यों न सज़ा दी जाय?"

मछुआ बड़ा वाक्-चातुर था। बोला—"ख़ुदावंद, हुज़ूर के इनाम ने मुझे मालामाल कर दिया। मैंने वह मुहर केवल इसलिये उठा ली कि इस पर हुज़ूर का मुबारक नाम ख़ुदा है, कहीं उस पर किसी का पैर न पड़ जाय।"

ख़ुसरो मछुए की अनोखी सूझ पर मुग्ध हो गया, और उसे चार हज़ार मुहरें और दिलवाईं।

---

(५६)

ख़ुसरो और बारबद गायक की वाक्-चातुरी

ख़ुसरो परवेज़ के दरबार में एक निपुण कलावंत था, जिसका नाम बारबद था। ईरान में उसकी उतनी ही ख्याति थी, जितनी भारतवर्ष में तानसेन की। बारबद गाने में उतना प्रवीण न था, जितना सितार और ऊद बजाने में। उसके पास एक गुलाम था। वह गाने में अद्वितीय था। बारबद कभी-कभी उसे भी बादशाह के

दरबार में ले जाता था। बादशाह को ग़ुलाम के गाने से इतना प्रेम हो गया कि कभी-कभी वह बारबद का सितार न सुनकर ग़ुलाम का गाना ही सुनना पसंद करने लगा। बारबद को अपने गुलाम से ईर्ष्या-भाव उत्पन्न हो गया, और उसने गुप्त रूप से उसका वध करा दिया। बादशाह को जब यह मालूम हुआ, तब उसके क्रोध का वारापार न रहा। बारबद को बुलाकर बोला—"जालिम! तूने यह क्या ग़ज़ब किया! तेरी बदौलत मेरी जिंदगी का आधा मजा जाता रहा। मुझे तेरे सितार में जितना मजा आता था, उतना ही उसके गाने में हासिल होता था। इसकी सजा यही है कि तुझे भी क़त्ल कर दिया जाय।"

बारबद प्राण-भय से काँप तो रहा था, फिर भी हवास गुम न थे। बोला—जहाँपनाह, मैंने तो क्रोध और मत्सर के आवेश में अंधे होकर आपकी जिंदगी का आधा मजा किरकिरा कर दिया, किंतु आप बिना किसी उत्तेजना के अपने को शेष आधे से भी वंचित किए लेते हैं। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है?"

खुसरो यह जवाब सुनकर फड़क गया, और उसका अपराध क्षमा कर दिया।

---

(५७)

खलीफ़ा उमर का लज्जित होना

खलीफ़ा उमर कभी-कभी प्रजा की वास्तविक दशा देखने के लिये भेष बदलकर रात को गलियों में घूमा करते थे। एक रात को इन्हें किसी घर में हँसी-दिल्लगी का शोर सुनाई दिया। रात के वक़्त शोर मचाकर पड़ोसियों की मीठी नींद में बाधा डालनेवाले ये कौन लोग हैं यह देखने के लिये खलीफ़ा पास की एक दीवार पर चढ़ गए, और एक ऊँची खिड़की से मकान के अंदर झाँका। देखा, तो एक मर्द और औरत बैठे शराब पी रहे और नशे में मस्त होकर क़हक़हे मार रहे हैं। शराब पीना क़ुरान में हराम कहा गया है। उस वक़्त तक खलीफ़ों ने शराब नहीं पी थी। उमर यह देखकर बिगड़े, और उससे कहा—"ओ बेहया, तुझे इस तरह गुनाह करते हुए शर्म नहीं आती? क्या तू समझता है, तेरा गुनाह खुदा ताला की निगाहों से छिपा है?"

शराबी ने खलीफ़ा को पहचान लिया। मारे खौफ़ के नशा चला गया। अब जान बचनी मुश्किल है। खलीफ़ा इस गुनाह को कभी माफ़ न करेंगे। किंतु वह वाक्-चातुर आदमी था, बोला—"ऐ खलीफ़ा, अगर मैंने एक गुनाह किया है, तो आपने तीन गुनाह किए हैं। क्या आपको खुदा का खौफ़ नहीं है?"

"मैंने कौन-से तीन गुनाह किए, क्या तू साबित कर सकता है?"

"आप गिनिए, मैं गिनाता हूँ। पहला गुनाह तो यह है कि ख़ुदा ताला ने फ़र्माया है कि तू अपने पड़ोसी का परदा न खोल, और आपने इस हुक्म को तोड़ दिया। दूसरा गुनाह यह कि ख़ुदा ताला ने कहा है कि तू किसी मोमिन के घर जा, तो सदर दरवाजे से जा, और आप खिड़की के रास्ते आए हैं। तीसरा गुनाह यह है कि ख़ुदा ताला ने कहा है, तू किसी मोमिन के घर जा, तो उसे सलाम कर। आपने इस हुक्म की पाबंदी नहीं की।"

ख़लीफ़ा ने लज्जित होकर उस आदमी का अपराध क्षमा किया। हाँ, उससे यह वचन ले लिया कि अब कभी शराब न पिऊँगा।

---

(५८)

ख़लीफ़ा उमर का क्षमा-दान

जिन दिनों ख़लीफ़ा उमर की ईरान के बादशाह से लड़ाई हो रही थी, ईरानी फ़ौज का एक सामंत क़ैद करके ख़लीफ़ा के सामने लाया गया। ख़लीफ़ा ने उसे क़त्ल किए जाने का हुक्म दिया। सामंत ने अर्ज़ की—"ऐ ख़लीफ़ा, मैं बहुत प्यासा हूँ, थोड़ा-सा पानी मँगवा दीजिए।" पानी लाया गया, लेकिन सामंत इतना भयातुर हो रहा था कि पानी उसके कंठ के नीचे न जा सका। ख़लीफ़ा ने उसे दिलासा देने के लिये

कहा—"घबराओ मत, पानी पी लो। जब तक पानी न पी चुकोगे, तुम्हारी गरदन न मारी जायगी।' सामंत ने पानी का प्याला ज़मीन पर पटक दिया, और बोला—'अपने क़ौल का खयाल रखिएगा।"

अर्ल का सन्नाटे में आ गए, लेकिन वचन दे चुके थे, उसका पालन करना आवश्यक था। उस सामंत को अभय प्रदान किया।

---

(५६)

हिशाम और कवि की वाक्-चातुरी

हिशाम बिन अब्दुलमलिक की तारीफ़ में एक कवि ने एक क़सीदा लिखा, और जाकर उसे सुनाया। हिशाम बड़ा दीनदार ख़लीफ़ा था। कवि से बोला—"हमारे नबी ने किसी आदमी के मुँह पर उसकी बड़ाई करने को मना किया है, क्या तुझे यह नहीं मालूम ?" कविगण वाक्-चातुर तो होते ही हैं, उसने उत्तर दिया—"मैंने हुज़ूर की तारीफ़ नहीं की है। आपमें जो गुण विद्यमान हैं, मैंने केवल उनका दिग्दर्शन करा दिया है, जिसमें आप ख़ुदा का शुक्र करें।" हिशाम यह जवाब सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ, और कवि को इनाम देकर बिदा किया।

---

(६०)

चतुराई-पूर्ण आज्ञा ।

एक कवि ने खलीफा अलमसूर की शान में एक क़सीदा लिखा । खलीफा ने खुश होकर पूछा—"मुझसे तू क्या चाहता है ? मैं वही करने को तैयार हूँ ।" कवि ने कहा—"हुजूर, मक्का के आमिल को लिख दें कि अगर मैं कभी शराब से बदमस्त हो जाऊँ, तो वह मुझे सज़ा न दें ।"

"यह तो हो नहीं सकता । शराबी के साथ कोई रिआयत नहीं की जा सकती ।"

"तो मुझे और किसी बात की ख्वाहिश नहीं है ।"

खलीफ़ा ने देखा, यह किसी तरह मेरा दामन न छोड़ेगा, तब मक्का के आमिल को लिखा—"अगर यह कवि शराब से बदमस्त तेरे पास लाया जाय, तो इसके पच्चीस कोड़े लगाए जायँ । लेकिन जो इसे लाए, उसके सौ कोड़ों से कम न लगें ।

कितनी चातुर्य-पूर्ण आज्ञा थी । नीति-मर्यादा की रक्षा भी हो गई, और कवि की इच्छा भी पूरी हो गई ।

---

(६१)

दो सूबेदार

जाफ़र खलीफ़ा हारूँरशीद का मंत्री था, और उसका भाई

फ़ज्ल .खुरासान का सूबेदार था। फ़ज्ल से किसी बात पर नाराज़ होकर ख़लीफ़ा ने उसे बरख़ास्त कर दिया, और उसकी जगह पर अलीबिन ईसा को नियुक्त किया। एक दिन ख़लीफ़ा जाफ़र मंत्री के साथ शहर के बाहर सैर करने गया। देखा, ऊँटों की क़तार सोने से लदी हुई चली आ रही है। ख़लीफ़ा ने पूछा—"ये ऊँट कहाँ से आ रहे हैं?" ऊँटवान ने कहा—"ख़ुरासान से। अलीबिन ईसा ने .ख़ुरासान से ख़लीफ़ा को यह भेंट भेजी है।"

ख़लीफ़ा ने जाफ़र से पूछा—'यह सोना उस समय कहाँ था, जब तेरा भाई सूबेदार था?"

जाफ़र ने अविचलित भाव से उत्तर दिया—"अपने स्वामियों के पास।"

कूफ़ा के कुछ निवासी ख़लीफ़ा मामूँ के पास गए, और उससे उस सूबेदार की शिकायत की, जिसे ख़लीफ़ा ने कूफ़ा में नियुक्त किया था। ख़लीफ़ा ने उनकी बातों पर ध्यान न दिया, और कहा—"तुम्हारी शिकायत झूठी है, वह बड़ा न्यायशील, सहृदय और योग्य पुरुष है।

यह सुनकर एक कूफ़ा-निवासी ने कहा—"अगर वह ऐसा नर-रत्न है, तो हुज़ूर अन्य प्रांतों को भी उससे सुशासित किए जाने का सौभाग्य क्यों नहीं प्रदान करते?"

---

(६२)

तीन कवियों के क़सीदे

(१)

एक कवि ने किसी ख़लीफ़ा की शान में क़सीदा लिखा। ख़लीफ़ा ने खुश होकर कहा—"इसके बदले में तुम क्या इनाम लेना चाहते हो ?"

कवि—"जहाँपनाह, मुझे एक शिकारी कुत्ता प्रदान कीजिए।"

ख़लीफ़ा—"कुत्ता ! अजी कोई दूसरी चीज़ माँगो।"

कवि—"मुझे पहले कुत्ता ही मिले।"

जब कुत्ता मिल गया, तब कवि ने कहा—"कुत्ते के साथ पैदल शिकार खेलते कैसे बनेगा ? मैं इतना तेज़ नहीं दौड़ सकता।"

ख़लीफ़ा ने उसे एक घोड़ा दिला दिया।

कवि—"इसके लिये अनेक धन्यवाद ! लेकिन घोड़े की सेवा मुझसे न होगी, मैंने यह काम कभी नहीं किया।"

ख़लीफ़ा ने एक ग़ुलाम दिला दिया।

कवि—"लेकिन हुज़ूर, जब शिकार लेकर वापस आऊँगा, तब कोई उसे पकानेवाला भी तो चाहिए। मुझे तो पकाना नहीं आता।"

ख़लीफ़ा ने एक लौंडी खाना पकाने को दिला दी।

कवि—"हुज़ूर के कहाँ तक गुण गाऊँ ? लेकिन इतने प्राणियों को रक्खूँगा कहाँ ? मेरे तो घर ही नहीं है।"

खलीफ़ा ने उसे एक मकान दिला दिया।

कवि—"जहाँपनाह, अब मुझे केवल एक ज़रूरत और है, और वह यह कि मैं इतने प्राणियों को खिलाऊँगा कैसे ?"

खलीफ़ा ने हुक्म दिया—इसे छुहारों का बाग़ दिया जाय। कवि ने तब खलीफा के हाथों का बोसा लिया, और चला गया।

(२)

दूसरे कवि की कथा सुनिए। आपने एक खलीफ़ा को क़सीदा पढ़कर सुनाया। खलीफा ने पूछा—"यह बताओ, तुम इसका इनाम क्या लोगे—३०० मुहरें या तीन सदुपदेश, जिनमें से एक-एक लाख मुहरों का है ?"

कवि ने खलीफ़ा को खुश करने और अपनी सुरुचि का परिचय देने के लिये तीनो उपदेश लेना स्वीकार किया।

खलीफ़ा ने कहा—"अच्छा, सुनो। अगर तुम्हारे मोज़े पुराने और मैले हो जायँ, तो नए मोज़े पहनो, क्योंकि पुराने मोज़ों से दूसरे वस्त्रों की शोभा भी बिगड़ जाती है।"

कवि—"अगर यही आपका पहला उपदेश है, तो मेरी १०० मुहरें पानी में गिर गईं !"

खलीफा—"दूसरा उपदेश यह है कि जब दाढ़ी में इत्र मलो, तो केवल ऊपर की ओर मलो; नहीं तो गरेबान मैला हो जायगा।"

कवि—"१०० मुहरें फिर पानी में गिर गईं !"

ख़लीफ़ा तीसरा उपदेश देने जा रहे थे कि कवि ने कहा—"ख़ुदा के लिये तीसरा उपदेश-रत्न अपने ख़ज़ाने ही में सुरक्षित रखिए, और उसके बदले मुझे मेरी बाक़ी १०० मुहरें प्रदान कीजिए।"

(३)

एक कवि ने किसी ख़लीफ़ा की शान में एक क़सीदा लिखा, और उसे सुनाया। ख़लीफ़ा ने ख़ुश होकर कहा—"तुम्हें इसका क्या इनाम दूँ ?" कवि ने कहा—"एक लाख मुहरें।" ख़लीफ़ा ने कहा—"यह तो बहुत बड़ी रक़म है। कम-से-कम बतलाओ।" कवि ने उत्तर दिया—"एक सौ मुहरें दी जायँ।" ख़लीफ़ा ने पूछा—"तुमने दोनो मात्राओं में इतना बड़ा अंतर क्यों रक्खा ?" कवि ने कहा—"जब आपने मुझसे पूछा क्या लोगे, तब मैंने आपके रुतबे का ख़याल किया, और जब आपने उसे घटाने के लिये कहा, तब मैंने अपनी हैसियत का ख़याल किया।"

ख़लीफ़ा ने प्रसन्न होकर कहा—"क़सम ख़ुदा की, हम अपनी नाक़दरी न करेंगे।" यह कहकर उसने कवि को एक लाख मुहरें दिलवा दीं।

---

(६३)

आबूबकर और रामप्रसाद के विचार

(१)

मुसल्मान आबूबकर एकनिष्ठ ख़लीफ़ा थे। आपने एक

रोज़ कहा था—"मेरा दिल चाहता है, मक्के जाकर वहाँ की मसजिद जला डालूँ; क्योंकि ऐसा हो जाने से भक्तजन उस मसजिद में जाने का आग्रह छोड़कर घर ही में, सर्वत्र, उस मसजिद के ईश्वर के प्रति प्रेम प्रकट करेंगे।"

खलीफ़ा के ये वचन बहुत ही तत्त्व से भरे हुए हैं। माना कि तीर्थ-यात्रा भगवद्भक्ति बढ़ाने में साधारण लोगों को सहायता देती है, परंतु आजकल तीर्थ-यात्रा को ही सर्वस्व समझकर जो लोग अपने घट में प्रभु का निवास अनुभव नहीं करते, उन्हीं को उद्देश कर खलीफ़ा ने ये वचन कहे हैं।

(२)

बंगाल के भक्त रामप्रसाद सेन एक दिन हाली-शहर से काशी जा रहे थे। रास्ते में आपको स्वप्न हुआ—"तेरे लिये तीर्थाटन की ज़रूरत नहीं; क्योंकि माता अन्नपूर्णा तेरे हृदय में ही बस रही हैं।"

रामप्रसाद तुरंत घर लौट आए, और घर आकर एक गीत बनाया, जिसका सारांश यह है—

"अब मुझे काशी जाने से क्या काम है?"

"माताजी के पग तले पहुँच जाने से गंगा और वाराणसी दोनो मिल गई हैं।"

"हृदय-कमल में ध्यान करते समय मैं आनंद-सागर में डूब जाता हूँ।"

"माता महाकाली के चरणों में कोकोनद तीर्थ है।" इत्यादि।

---

(६४)

ईरान की चार चतुराइयाँ

(१)

किसी आदमी ने एक महात्मा से पूछा—"यदि हमें किसी मैदान में निमाज़ अदा करनी पड़े, और दिशाओं का ज्ञान न हो, तो किस तरफ़ मुँह करके अदा करें ?"

महात्मा ने उत्तर दिया—"अपनी गठरी की ओर।"

(२)

किसी बादशाहत में एक मनुष्य लाया गया, जिसका दावा था कि मैं नबी हूँ, और हज़रत जिब्रील मुझसे अक्सर बातें करने आते हैं। लोगों ने कहा—"यह काफ़िर है, इसे क़त्ल कर देना चाहिए।" ख़लीफ़ा ने कहा—"नहीं, इसे किसी चिकित्सालय में भेजना चाहिए, जिसमें वहाँ इसके पागलपन की दवा हो।"

कुछ दिनों बाद बादशाह शफ़ाख़ाना देखने गए। वहाँ उस दीवाने को बैठा पाया। उसके मुख पर अब पागलपन का कोई चिह्न न था। बादशाह ने मुस्किरा कर पूछा—"यहाँ तो जिब्रील तुम्हारे पास नहीं आते ?"

"हाँ, रोज़ आते हैं।"

"अब वह तुमसे क्या कहते हैं ?"

"अब यही कहते हैं कि तुम्हें उत्तम भोजन, मसालेदार

सालन और सुगंधित शरबत मिलता है, यहाँ से कहीं और जाने का नाम न लेना।"

(३)

किसी ख़लीफ़ा के यहाँ दावत में एक अरब भी सम्मिलित हुआ। उसने कभी फ़ालूदा नहीं खाया था। मज़ा जो आया, तो और चीज़ें छोड़कर फ़ालूदे ही पर टूटा, और प्याले-पर-प्याले उड़ाने लगा। मेहमानों में से एक आदमी ने उससे कहा—"बहुत फ़ालूदा न खाओ, नहीं तो मर जाओगे।"

अरब ने प्याले से हाथ खींच लिया—एक क्षण तक चुपचाप कुछ सोचता रहा, और तब आदमी से यह कहकर कि मैं अपने बाल-बच्चों को तुम्हारे सुपुर्द करता हूँ, द्विगुण उत्साह से फ़ालूदे पर टूट पड़ा।

(४)

एक अरब ने किसी गंधी की दूकान से थोड़ी-सी कस्तूरी चुरा ली। जब वह पकड़ा गया, और क़ाज़ी के सामने पेश हुआ, तब क़ाज़ी ने पूछा—"तूने कस्तूरी क्यों चुराई ?" वह बोला—'मैंने एक रवायत सुनी है कि आदमी जो चीज़ चुराता है, वह क़यामत के दिन उसके ख़िलाफ़ गवाही देती है. और उसकी गरदन से चिमट जाती है। मुझे कस्तूरी की ख़ुशबू बहुत पसंद है, इसीलिये मैंने उक़बा के वास्ते इसे चुराया है।" यह सुनकर क़ाज़ी ने उस अरब को छोड़ दिया।

---

(६५)

छुआछूत, योगी और चांडाल

एक योगी किसी नदी के किनारे भगवान् का ध्यान कर रहा था। इतने ही में एक चांडाल वहाँ आकर कपड़े धोने लगा। जल के छींटे योगी पर पड़े। इससे योगी की आँखें खुलीं, और उसने धोबी से कपड़े धोना बंद करने के लिये कहा। चांडाल अपने काम में एकाग्र चित्त से लगा था, अतएव योगी के वचन उसने नहीं सुने। योगी ने क्रोधांध होकर चांडाल पर प्रहार किया। चांडाल ने अनजान में हुए अपराध के लिये क्षमा माँगी।

इसके बाद योगी ने छूत दूर करने के लिये स्नान किया। इधर चांडाल ने भी स्नान किया। तब योगी ने उससे पूछा—"तूने किसलिये स्नान किया ? तू तो मेरे स्पर्श से अपवित्र नहीं हुआ था ?"

चांडाल बोला—"जिस उग्र क्रोध ने एकदम आपके अंदर प्रवेश करके आपका हाथ मेरे ऊपर उठवाया है, वह क्रोध मेरे-जैसे चांडाल-जाति के मनुष्यों से भी हज़ारगुना अधिक अपवित्र है। इसके आवेश में आकर आपने मुझे छुआ है। यही छूत मिटाने के लिये मैंने स्नान किया है।"

चांडाल की बात सुनकर योगी महाराज की आँखें खुल गईं। सच बात है, क्रोध के समान प्रचंड चांडाल दूसरा नहीं है।

---

(६६)

अपनी स्त्री को मुँह-दिखाई की भेंट

विलायत के एक मज़दूर को बहुत शराब पीने की आदत थी। कुछ दिनों बाद इसने एक रमणी के साथ विवाह किया। विवाह के अगले दिन इसने एक काग़ज़ पर भविष्य में कभी शराब न पीने की प्रतिज्ञा लिखी, और उस प्रतिज्ञा-पत्र को सुंदर फ़्रेम में मढ़ाकर विवाह के दिन अपनी स्त्री को मुँह-दिखाई में दिया।

इस भेंट की हम जितनी तारीफ़ करें, उतनी थोड़ी है। भला, इस भेंट से अच्छी और कौन भेंट हो सकती है? यदि इसी तरह लोग अपने दोषों को त्याग करने का संकल्प विवाह के समय अपनी स्त्री को भेंट करें, तो दांपत्य जीवन अधिक सुखमय हो सकता है।

---

(६७)

एक दरिद्र का अपूर्व साहस

एक बार इटली की आडिज-नदी में बहुत ज़ोर की बाढ़ आई। उससे विएना-नगर के पुल की दोनो बाज़ू टूट गई। इस पुल के बीचोबीच कर वसूल करनेवाला कारकुन स-कुटुंब रहता था। पल-पल में इस पुल का थोड़ा-थोड़ा हिस्सा नदी में गिरता जाता था, और ऐसा मालूम होता था कि

थोड़ी ही देर में कारकुन सकुटुंब नदी में गिरकर डूब जायगा। किनारे खड़े हुए मनुष्यों में से एक दयालु पुरुष ने कहा—"जो कोई इन लोगों को बचाएगा, उसे मैं पाँच सौ रुपए इनाम दूँगा।"

पर कोई आगे नहीं बढ़ा। थोड़ी देर बाद एक दरिद्र मनुष्य साहस करके एक छोटी-सी नौका लेकर इस विपत्तिवाले स्थान के नीचे पहुँचा, और पुल के ऊपर से एक रस्सी टँगाकर उसके द्वारा कारकुन को सकुटुंब नौका में उतार लिया। ईश्वर की कृपा से इस तरह सब बच गए। थोड़ी ही देर बाद उस जगह से धड़ाका करता हुआ पुल टूट पड़ा।

इसके पश्चात् दयालु धनवान् अपना कहा हुआ इनाम उस दरिद्र रक्षक को देने गया; पर उसने इनाम लेना बिलकुल मंजूर नहीं किया, और कहा—"महाशय! आप देख ही रहे थे कि रुपयों के लोभ से तो कोई बचाने के लिये गया नहीं। और, मैं भी रुपयों के वास्ते नहीं गया, बल्कि अपने मन के आवेग ही के कारण गया था। इसलिये मुझे आपके इनाम की जरूरत नहीं।"

---

(६८)

सच्चा पीर और राजा इब्राहीम का अहम्-त्याग

बलख-देश का राजा इब्राहीम आदम जिस पीर अथवा

गुरु का सेवक था, उसके पास प्रतिदिन अनेक अतिथियों का समागम होता था। जो सेवक मंत्र लेने की इच्छा से आते थे, उनको पीर पहले भिन्न-भिन्न प्रकार के काम सौंपता था। राजा को उसने अहंकार-रहित बनने का उपदेश देकर लकड़ी इकट्ठा करने का काम सौंपा था।

इसी तरह बहुत वर्ष बीत गए, पर गुरु ने इब्राहीम को मंत्र नहीं दिया। एक दिन राजा लकड़ियाँ चीरकर, पसीने में तर होकर रसोई-घर गया। रसोई-घर के अध्यक्ष ने लकड़ियाँ खराब होने के बारे में इसे डाट बताई, और एक थप्पड़ जमा दिया। राजा को यह बहुत ही बुरा लगा। उसने कहा—"अगर आज मैं बलख में होता, तो ऐसा कदापि नहीं होने पाता।" धीरे-धीरे यह बात गुरुजी के कानों में पहुँची। थोड़े दिनों बाद इब्राहीम ने गुरुजी से कहा—"प्रभो! बहुत दिन हो गए, फिर भी आपने मुझे ज्ञानोपदेश नहीं दिया।"

पीर साहब बोले—"बेटा! तुम्हारे दिमाग़ में अभी तक बलख की बू है। तू बलख का राजा है, इस बात का तुझे अभी तक अभिमान है।"

इस समय इब्राहीम को रसोईखाने की कठिन परीक्षा का स्मरण हो आया, और वह लज्जा से नीचा मस्तक करके खड़ा रहा।

इस प्रकार छत्तीस वर्ष तक पीर के पास रहकर इब्राहीम ने ब्रह्म-विद्या प्राप्त की। इस लंबे समय में इसने ढोरों का

गोवर, मूत्र उठाने का भी काम किया, और भंगी के काम से भी नहीं वचा था। गुरु ने जब देख लिया कि यह पूरे तौर पर उपदेश लेने के योग्य बन गया है, तभी उसने इसके अंदर ज्ञान रूपी बीज रोपा था।

सच्चे उपदेशक अनधिकारी को, जब तक वह अधिकारी नहीं बन जाता, अध्यात्म-विद्या का उपदेश नहीं देते। यदि दे दें, तो जैसे बीमार को कुपथ्य देने से उलटा रोग बढ़ता है, वैसे ही अनधिकारी मनुष्य उपदेश पाकर उलटे बिगड़ते हैं। आजकल भारतवर्ष में, हम देखते हैं, साधारण मनुष्यों की अपेक्षा मिथ्या वेदांती अधिक कनक-कांता-परायण हो गए हैं, और "आत्मा को क्या लगता है" ऐसा बकवाद करते फिरते हैं। इसका कारण यही है कि साधन-चतुष्टय-संपन्न अधिकारी होने के पहले ही उनके हाथ में वेदांत के अभेद-वाद की पूँछ पकड़ा दी जाती है। ऐसे मनुष्य खुद तो भ्रष्ट होते ही हैं, पर और लोगों को भी भ्रष्ट कर डालते हैं।

---

(६६)

महात्मा साक्रेटीस की सहिष्णुता

हमने ऊपर एक जगह बताया है कि प्रसिद्ध ग्रीक तत्त्ववेत्ता साक्रेटीस, की स्त्री बहुत ही कर्कशा थी। एक दिन पति से

उसने लड़ाई की, परंतु पति को जब क्रोध नहीं आया तब, उसने जूठे जल का डोल उस पर डाल दिया। तब साक्रेटीस ठंडे दिल से बोले—"गर्जने के बाद वर्षा होती ही है।"

एक बार पत्नी ने कई मित्रों के सामने साक्रेटीस के थप्पड़ मार दिया। मित्रों ने साक्रेटीस को बहुत ही उत्तेजित किया कि ऐसी असभ्य स्त्री को चौदहवें रत्न का मजा चखाना चाहिए। पर महात्मा साक्रेटीस ने कहा—"मैं तुम्हारे सामने तमाशा नहीं करना चाहता, जिसे तुम लोग दूर खड़े-खड़े देखा करो, और जैसे कुत्तों को लड़ते देखकर मुहल्ले के छोकरे तालियाँ पीटते हैं, वैसे तुम भी तालियाँ पीटो!"

धन्य है साक्रेटीस! आपने मित्रों को खूब ही मुँहतोड़ जवाब दिया।

---

(७०)

महात्मा साक्रेटीस और अमितभाषी युवक

एक युवक साक्रेटीस के पास भाषण देने की कला सीखने आया। पर साक्रेटीस से जरा पहचान होते ही वह उसी प्रसंग पर लंबी-लंबी बातें करने लगा। साक्रेटीस ने उससे कहा—"भाई! तुमसे मैं दूनी फीस लूँगा।"

युवक ने आश्चर्य के साथ पूछा—"ऐसा क्यों?"

साक्रेटीस ने जवाब दिया—"इसलिये कि मुझे दूनी विद्या तुझको सिखानी पड़ेगी—एक तो चुप रहने की और दूसरी भाषण देने की।"

सच बात है, अनावश्यक बोलना दूषण है। और फिर, गुरुजनों के सामने लंबी-लंबी बातें बनाना तो महज मूर्खता ही कहलाती है।

---

(७१)

मौन में नौ गुण

एक पड़ोसिन ने एक स्त्री से आकर कहा—"बहन ! मेरे पति का स्वभाव बहुत खराब है। उनका क्रोध देखकर मुझे भी क्रोध आ जाता है, और रोज हमारे यहाँ रँधा धान पड़ा रहता है।"

स्त्री ने कहा—"ओहो बहन ! इसमें क्या बड़ी बात है ! मेरे पास एक ऐसी अच्छी दवा है कि जिस समय वह तुझसे लड़ने बैठें, उस समय तू उस दवा को घूँट मुँह में भर लेना। इससे तेरे पति चुप हो जायँगे।"

पड़ोसिन ने ऐसा ही किया, और दो-तीन बार यह दवा पति के क्रोध के समय आजमाई। इसमें उसे सफलता मिली।

एक दिन उसने उस स्त्री के पास जाकर कहा—"बहन ! तुम्हारी दवा तो बहुत ही प्रभावोत्पादक है। इसमें क्या-क्या

चीज़ें डाली हैं? मुझे भी बताओ, तो मैं भी बनाकर रख लूँ।"

स्त्री ने कहा--"बहन! इसमें शुद्ध जल के सिवा दूसरी कोई चीज़ नहीं। असल में तुम्हें जो कामयाबी हुई है, वह किसी दवा से नहीं हुई है। वह मौन का असर था। मौन में बड़ा भारी गुण है। मुँह में पानी भरा होने से तुमसे जवाब नहीं दिया गया, और तुझे शांत देखकर तेरे पति का क्रोध भी जाता रहा।"

यह कहावत सच है कि "मौन में नौ गुण होते हैं।"

---

(७२)

फिज़ूल चीज़ों की क़द्र

मैंचेस्टर-नगर के एक कारीगर ने अपने धंधे से निवृत्त होकर एक ऊँचे कुल के उमराव (लॉर्ड) से विशाल हवेली ख़रीदी। ख़रीदते समय यह शर्त हुई कि हवेली में जितना फ़र्नीचर होगा, सब ख़रीदार को मिलेगा।

इसके बाद ख़रीदार का हवेली पर क़ब्ज़ा हो गया। क़ब्ज़ा होने पर उसने देखा कि एक छोटी-सी आलमारी अपने स्थान पर मौजूद नहीं है। इसके बाबत उसने पुराने मालिक से पूछा। पुराने मालिक ने बताया—"वह आल-मारी मैं दूसरी जगह ले गया हूँ। मुझे ख़याल नहीं आया था

कि इतनी बड़ी हवेली में आप छोटी-सी आलमारी के लिये इतनी लगन रक्खेंगे !"

यह बात सुनकर नए मालिक ने कहा—"जनाव ! अगर मैं सारी जिंदगी ऐसी फ़िज़ूल चीज़ों की इतनी लगन न रखता, तो आज आपकी मिल्कियत कभी न ख़रीद सकता। इसी प्रकार यदि आप भी फ़िज़ूल चीज़ों पर बारीक नज़र रखते, तो आज आपको सारी हवेली बेचने की नौबत न आती !"

---

(७३)

लापरवाही से नुक़सान

एक सिपाही के घोड़े की नाल का एक कीला उखड़ गया। घोड़े पर सवार होते समय सिपाही ने सोचा—"नाल बराबर ठुकाना कोई परमावश्यक नहीं है। एक कीला निकल गया है, तो विशेष चिंता की बात नहीं।"

ऐसा विचारकर उसने घोड़ा जोर से दौड़ाया। नाल निकल पड़ी। थोड़ी देर बाद पत्थर की ठोकर लगने से घोड़ा भी गिर पड़ा, और सख्त चोट लगने से घोड़े की मृत्यु हो गई ! अब सिपाही पैदल चलने लगा। मार्ग में शत्रुओं के सिपाहियों ने उसे अकेला देखकर मार डाला।

अगर यह सिपाही शुरू से ही लापरवाही न करता,

और समय पर घोड़े की नाल में एक छोटा-सा कीला लगवा देता, तो शायद उस पर यह आपत्ति न आती।

---

(७४)

गारफ़ील्ड का बालकों के प्रति सम्मान

अमेरिका का प्रमुख गारफ़ील्ड बड़े पुरुषों की अपेक्षा बालकों का बहुत सम्मान करता था। चाहे जैसे कंगालों के बालक होते, पर वह उन्हें देखते ही सलाम करता था। उसका कहना था—"इन बालकों के फटे हुए कपड़ों के नीचे भविष्य की कितनी ही बड़ी-बड़ी आशाएँ और महत्ताएँ छिपी हुई हैं।"

सचमुच आज का बालक भविष्य का नागरिक और जननी-जन्मभूमि का उद्धारक बनता है। यह बात भूलने की नहीं है, और इसीलिये माता, पिता, गुरु और अन्य संबंधियों को चाहिए कि बालक का समुचित आदर करें।

---

(७५)

योगेंद्रनाथ का आत्मत्याग

कलकत्ते के योगेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय नए सोलीसिटर थे। एक दिन आप समान अवस्था के कितने ही मित्रों के साथ गंगा-स्नान करने गए। उस समय गंगाजी पूरे ज़ोर से बह रही थीं। बहुत-से आदमी गंगाजी में तैरने उतरे।

इनका एक आदमी थोड़ी दूर जाकर "डूबा" "डूबा" करके चिल्लाने लगा। पानी में डूबते हुए मनुष्य को बचाने जाना बहुत ही जोखिम का काम है। भयभीत मनुष्य मूर्ख आदमी की तरह बचानेवाले को पकड़ लेते हैं, और दोनो डूब जाते हैं। इस भय से लोग उसे बचाने नहीं गए। परंतु योगेंद्रनाथ से नहीं रहा गया। वह अकेले ही फ़ौरन् उसकी तरफ़ गए, और उसे पकड़कर ऊँचा उठा लिया। इतने ही में किनारे से भेजी हुई एक छोटी नाव वहाँ जा पहुँची। नाव पहुँचने पर डूबनेवाला मनुष्य घबराता हुआ योगेंद्रनाथ के कंधे पर चढ़कर नौका में कूद पड़ा, परंतु योगेंद्रनाथ उसके भार और आघात से नदी के तले पहुँचकर मर गए।

धन्य है योगेंद्रनाथ को, जिन्होंने दूसरे के प्राण बचाने के लिये अपने प्राण गँवा दिए।

---

(७६)

एक अँगरेज़ का भ्रातृप्रेम

मिस्टर ए० डबल्यू० गेरेट बंगाल की पाठशालाओं के इंस्पेक्टर थे। एक दिन ऑफ़िस के हेडक्लर्क ने आपसे विनय-पूर्वक पूछा—"साहब ! आपने अभी तक विवाह क्यों नहीं किया ?"

साहब ने उत्तर दिया—"हम दो भाई हैं। बड़े भाई के

पाँच लड़के हैं। वंश-मर्यादा के योग्य संतानों को शिक्षा देने लायक़ धन मेरे भाई के पास नहीं है; इसलिये मैं ही इनकी शिक्षा का खर्च चलाता हूँ। अब यदि मैं विवाह करूँ, तो यह सहायता बंद अथवा कम करनी पड़े। और, ऐसा करने से इनकी शिक्षा बिगड़ जाय, जिससे हमारे कुल का गौरव नष्ट हो जाय।"

---

(७८)

ज्ञान की अगाधता

ट्रिनिटी-कॉलेज के एक विद्यार्थी ने अपने अध्यापक के पास जाकर कहा—"मेरा विद्याभ्यास पूरा हो गया है, अब मैं अपने घर जाना चाहता हूँ।"

अध्यापक ने ज़रा विरक्त भाव से कहा—"ठीक है। पर मैंने तो अभी अपनी शिक्षा का आरंभ ही किया है!"

इसी प्रकार स्कॉटलैंड-निवासी सुप्रसिद्ध कवि और उपन्यासकार सर वाल्टर स्कॉट ने कहा था—'मैंने सारी ज़िंदगी अपने अज्ञान के लिये पश्चात्ताप किया है।'

जो सच्चा विद्वान् होता है, वह ज्ञान की अगाधता पर लक्ष्य रखकर अपनी कमी पूरी करने का प्रयत्न करता है, और जो अधूरा घड़ा होता है, वही छलकता है।

हमारे देश में भी कितने ही ग्रेजुएट डिप्लोमा प्राप्त

करके मान लेते हैं कि हम विद्या-वाचस्पति बन गए। बस, इसी अभिमान के वशीभूत होकर वे भविष्य में अपना ज्ञान बढ़ाने के लिये जरा भी प्रयास नहीं करते। यह अच्छा नहीं। जब तक शरीर में प्राण हैं, तब तक ज्ञान का संपादन तो करना ही चाहिए।

---

(७८)

दो मित्र और प्रसंग का सदुपयोग

समान अवस्था के दो मित्र साथ-साथ पाठशाला में पढ़ने के बाद साधारण नौकरी में दाखिल हुए। नौकरी के दस वर्ष बाद एक दिन ये दोनो मिले। इनमें से एक की दशा बहुत ही दया-जनक थी। कपड़े फटे हुए थे, कुटुंबियों को एक बार भी पेट-भर भोजन नहीं मिलता था, क़र्ज़ के जाल से चारो तरफ़ से फँसा हुआ था, और न-जाने किस वक़्त लेनदार क़ैदख़ाने भेज दें, इसकी शंका रात-दिन बनी रहती थी।

दूसरा मित्र अपने कुटुंब के साथ आनंद से दिन बिताता था। कमख़र्ची से चार पैसे भी इकट्ठे कर लिए थे। मित्र की दुर्दशा देखकर इसे दया आई, और इसने थोड़ी सहायता मित्र को दी। उस समय दुर्दशा-ग्रस्त मित्र ने कहा—"भाई, हम दोनो ने बराबर तनख्वाह पर नौकरी की थी, परंतु दस

वर्ष में इतना अधिक फेरफार कैसे हो गया कि मैं भिक्षुक बना और आप दाता ?"

उद्योगी मित्र ने उत्तर दिया—"इस भेद का कारण सिर्फ़ एक ही शब्द है। तेरे सामने जब कोई आगे बढ़ने का शुभ प्रसंग आया, तब तूने कहा 'जाओ', और मेरे सामने जब ऐसा प्रसंग आया, तब मैंने कहा 'आओ।' मैंने अपने हरएक प्रसंग और अनुकूलता का अच्छे-से-अच्छा उपयोग किया है। इसी से मैं सुखी हूँ !"

---

(७६)

भक्ति-रस, अकबर और तानसेन

एक दिन अकबर बादशाह ने प्रसिद्ध गवैए तानसेन के भजन-कीर्तन से प्रसन्न होकर पूछा—"तुमने ऐसा गाना कहाँ सीखा ?"

तानसेन ने जवाब दिया—"मैंने बहुत वर्षों तक भारतवर्ष के उत्तमोत्तम गवैयों से संगीत-शास्त्र की शिक्षा पाई है। परंतु अंत में जब स्वामी हरिदासजी के चरण-कमलों में बहुत वर्षों तक बैठा, तब समझ पाया कि भाव-संगत गीत किसे कहते हैं ?"

अकबर ने तानसेन से कहा—"तुम्हें अपने गुरुजी का गायन मुझे सुनाना पड़ेगा। वह आश्रम से बाहर निक-

लते हैं या नहीं ? यदि नहीं, तो मैं ख़ुद उनके आश्रम में जाऊँगा।"

तानसेन बादशाह को स्वामीजी के आश्रम में ले गए, और गुरुजी के चरणों में दंडवत् करके, बादशाह को लेकर पास ही बैठ गए। इसके बाद उन्होंने यथाशक्ति उत्तम रीति से एक भजन छेड़ दिया। स्वामी हरिदासजी भी गुनगुन करते वह भजन गाने लगे। वह भजन सुनकर बादशाह एकदम मुग्ध हो गया।

जब स्वामीजी के पास से दोनो वापस आए, तब बादशाह ने आज्ञा दी—"तानसेन! फिर वही भजन सुनाओ।"

तानसेन ने वही गाना गाकर सुनाया, पर बादशाह को उसमें कुछ आनंद नहीं आया। बादशाह ने कहा—"तानसेन! तुमने यह गाना गुरुजी की तरह क्यों नहीं गाया? उन-जैसा आनंद इसमें क्यों नहीं आया?"

तानसेन ने उत्तर दिया—"यह गाना गाते समय मेरे मन में यह भाव समाया हुआ था कि मैं दिल्लीश्वर को गाना सुना रहा हूँ, पर स्वामीजी को त्रिलोकनाथ परमात्मा के सिवा उस समय किसी का भान नहीं था!"

जब परमात्मा की भक्ति से भक्त की हृत्तंत्री बज उठती है, तभी उसके गाने में अपार आनंद आता है।

---

(८०)

नेपोलियन बोनापार्ट और उद्यमशीलता

नेपोलियन बोनापार्ट कहता था—"'असंभव' शब्द मेरे शब्द-कोष में नहीं है।" जिस समय अफसरों ने उससे कहा—"महाराज! ऐसी बड़ी तोपें लेकर आल्प्स पर्वत पर नहीं चढ़ सकोगे।" तब उसने बताया—"तब तो आल्प्स पर्वत भी नहीं रह पाएगा।"

अंत में इसके सैनिक ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गए, त्यों-त्यों अथक परिश्रम करके पहाड़ पर रास्ता करते गए। और, धीरे-धीरे तोपों को ऊपर चढ़ाना शुरू किया। मन और शरीर का सारा बल उन्होंने इसी काम में लगा दिया। पर ऐसा भी समय आया कि नेपोलियन के साथ काम करनेवाले उसके चार सेक्रेटरी थककर विश्राम करने चले गए, परंतु बोनापार्ट एक क्षण भी अपने काम से अलग नहीं हुआ!

---

(८१)

पति-भक्ति और वींसबर्ग की स्त्रियाँ

वींसबर्ग-नगर पर जब शत्रुओं ने घेरा डाला, तब स्त्रियों ने घेरा डालनेवालों से प्रार्थना की—"हमें अपनी अमूल्य वस्तुओं के साथ बाहर निकल जाने दो।"

जीतनेवाले शत्रुओं ने स्त्रियों की प्रार्थना उदारता से

स्वीकार कर ली। थोड़े ही समय में वे देखते हैं कि नगर की सारी स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों को कंधे पर बिठाकर ज़ोर-शोर के साथ शहर के दरवाज़े से बाहर निकल रही हैं !

सचमुच पत्नी के लिये पति के सिवा बहुमूल्य वस्तु दूसरी कोई नहीं है।

---

(८२)

फ़ैशन का भूत और बर्मा की स्त्रियाँ

आजकल हमारे देश की स्त्रियों में नित नया 'फ़ैशन' घुसता जाता है, इससे अनावश्यक चीज़ों में अनाप-शनाप खर्च हो रहा है।

किसी समय बर्मा में भी यही हाल था। विवाह के बाद स्त्री का ख़र्च चलाना मुश्किल हो जायगा, इस भय से बर्मा के अनेक युवक विवाह करने को राज़ी नहीं होते थे, और बहुत उदासीनता दिखाते थे। इससे वहाँ की समझदार स्त्रियाँ अपना भावी अनिष्ट समझ गईं, और उन्होंने एक बड़ी सभा इकट्ठी की। इस सभा में उन्होंने निश्चय किया कि हमें सुशीला नारियों के धारण करने योग्य वस्त्रालंकार पहनने चाहिए। यह भी प्रस्ताव पास किया कि अमुक अवस्था के बाद स्त्रियों को "फ़ैशन" का ढोंग बिलकुल छोड़ देना चाहिए।

इसके बाद सुधार की इस योजना का ऐसा सुपरिणाम हुआ कि बर्मा के अनेक युवक विवाह करने को तैयार हो गए!

---

(८३)

फ़िलाडेलफ़िया का युवक और सुई की व्यवस्था

फिलाडेलफिया में एक घर में तीन बहनें रहती थीं। इनमें से एक के साथ एक युवक का प्रेम हो गया। एक दिन वह अपनी प्रियतमा से मिलने आया। उस समय तीनों बहनें घर में थीं। उनमें से एक ने कहा—"मुझे आश्चर्य होता है कि हमारी सुई कहाँ जाती रही?"

इस बात से युवक ने विचार किया—जिस युवती को सुई-जैसी चीज़, जो तीनों बहनों के हिस्से की थी, कहाँ रख दी, यही भान नहीं, वह मेरे घर आकर क्या व्यवस्था रख सकेगी! बस, उसी दिन से उस युवक ने उस युवती के साथ विवाह करने का विचार छोड़ दिया। और, अपना विवाह-संबंध तोड़ने की इच्छा भी सभ्यता और विनय के साथ प्रकट कर दी।

घर में ज़रा-सी वस्तु के रखने का भी निश्चित स्थान होना चाहिए। ऐसा न करने से घर में अव्यवस्था फैल जाती है।

---

(८४)

ग़रीब प्रजा और एक उमरावज़ादी

चौदहवें लुई के समय में विलायत में भयंकर दुष्काल पड़ा। उस समय ग़रीबों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए किसी ने राजदरबार में कहा—"लोगों को रोटियाँ खाने को नहीं मिलतीं।" यह सुनकर एक श्रीमती उमरावज़ादी, जिसने 'सूखा-हरा' कभी नहीं देखा था, बोल उठी—"तो ये लोग 'केक' क्यों नहीं खाते ?"

'केक' एक प्रकार की क़ीमती अँगरेज़ी मिठाई होती है, पर इस वेचारी को क्या मालूम कि यहाँ तो लोगों को सूखी रोटियाँ ही मिलना मुश्किल हो रहा है !

सचमुच धनवानों को ग़रीबों की दशा का ज्ञान बहुत ही कम होता है। वे अपने ऐशोआराम में ऐसे अंधे हो जाते हैं कि उन्हें ग़रीब लोग भी सुख भोगते ही दिखाई देते हैं। पर असल में हमारे श्रीमानों को ऐसा नहीं चाहिए। जब परमात्मा ने उन्हें समर्थ बनाया है, तो उन्हें चाहिए कि ग़रीबों की सेवा में अपने धन का सदुपयोग करें। इसी से वे बड़े कहलाएँगे। रहीम ने कहा है—

जे गरीब पर हित करैं, ते 'रहीम' बड़ लोग;
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण-मिताई-जोग !

---

(८५)

एक रशियन सेनापति का उद्यम

रशिया का सेनापति सोयारो अपने अपार उद्यम से नौकरों और अपने मातहत अफ़सरों को उत्साहित करता और उनमें इच्छा-शक्ति की वृद्धि करता था। इसी से उसके आदमी असंभव बात को भी संभव कर बताते थे। "आता नहीं" यह शब्द सुनते ही वह ऐसे स्वर और ऐसे हाव-भाव से "सीख लो" शब्द कहता कि अफ़सर और सैनिक उस विषय को पूरा-पूरा सीख लेने की कोशिश करते थे। इसी प्रकार जब वह सुनता—"अमुक काम कर नहीं सकते"; तब फ़ौरन् दृढ़ स्वर से कहता—"प्रयत्न करो।" इसके बाद कहता—"तुम पूरे तौर से चित्त लगाकर काम नहीं करते, इसी से उसे नहीं कर सकते; अब से खूब ध्यान देकर काम करो; अवश्य तुम्हारा काम पूरा होगा।"

सैनिकों से वह कहता—"भगवान् की कृपा पर विश्वास रखकर युद्ध-क्षेत्र में जाओ, पर गोला-बारूद को भीगने मत देना।" अर्थात् पूरा-पूरा ध्यान रखना, असावधान कभी मत रहना।

इसका विश्वास था कि आलस्य और असावधानता भक्ति-हीनता सूचित करते हैं। इन दुर्गुणवाले मनुष्य के

लिये भगवत्कृपा प्राप्त करना असंभव है, क्योंकि भगवान् उद्योगी पुरुष ही की सहायता करते हैं।

---

(८६)

प्रोफ़ेसर हेनरी का प्रयत्न

मि० हेनरी प्रिंसटन-कॉलेज में रसायन-शास्त्र के प्रोफ़ेसर थे। एक बार वह कितने ही महीनों तक एक ही विषय की बारीक जाँच करने में लगे रहे। यह देखकर एक दिन उनके सहकारी अध्यापक ने हँसी में उनसे कहा—"तुम पागल हो जाओगे। इस प्रयोग के सिवा तुम्हारा किसी दूसरे विषय में ध्यान ही नहीं है। घड़ी-दो-घड़ी भी आप किसी दूसरे विषय पर बात नहीं कर सकते।"

प्रोफ़ेसर हेनरी ने उत्तर दिया—"मेरे पूर्वज पेनिनसुलर-युद्ध में सैनिक थे। उन्होंने मुझे उपदेश दिया है कि जिस समय जो काम हाथ में लो, उस समय उसी पर सारा ध्यान दे दो। किसी शत्रु के क़िले की दीवार तोड़ने की जब हमें जरूरत पड़ती है, तब हम ऐसी व्यवस्था करते हैं कि तोप के गोले रात-दिन एक ही स्थान पर बरसाएँ, और यदि उस समय अलग-अलग गोलियाँ मारें, तो कार्य सफल नहीं होता।"

सच बात है, जिस काम को हाथ में लिया जाय, उसमें

ऐसे जुट जाना चाहिए कि वह कठिन हो, तो भी सरल होकर पूरा हो जाय।

---

(८७)

एक स्वदेश-भक्त सिपाही

लाटूर आवर्न फ्रांस की ग्रेनेडियर सेना में नौकर था। कई बार उसे ऊँचा पद देने का विचार किया गया, पर उसने ग्रेनेडियर के कप्तान के सिवा ऊँचे पद की कभी आशा नहीं रक्खी, और न कभी मंजूर ही किया। एक बार वह आज्ञा लेकर अपने स्नेही तथा संबंधियों से मिलने गया। वहाँ से अकेले लौटते समय मार्ग में इसे खबर मिली कि आस्ट्रिया के सैनिकों की एक टुकड़ी एक पहाड़ी मार्ग से बहुत जल्दी-जल्दी आ रही है। इस पहाड़ी मार्ग में एक जगह एक छोटा-सा क़िला था। उस किले के पास से होकर एक रास्ता जाता था। आवर्न इस रास्ते से दौड़ता हुआ संध्या-समय उस किले में इस आशा से पहुँचा कि मैं वहाँ जाकर वहाँ के रक्षकों को सावधान कर दूँगा, और फ्रांस की फ़ौज को खबर देने के लिये उनमें से एक आदमी को भेजूँगा। परन्तु वहाँ जाकर वह देखता है कि क़िले के सारे रक्षक भाग गए हैं।

यह देखकर दुःख और घृणा के साथ आवर्न ने अकेले ही दुर्ग की रक्षा करने का संकल्प किया। इस छोटे-से क़िले

में तीस सैनिक साधारण तौर पर रहते थे। इन लोगों ने भागते समय अपनी-अपनी बंदूकों को साथ ले जाने की शिक्षा नहीं पाई थी। आवर्न थोड़ा-सा भोजन करके, क़िले का दरवाज़ा बंद कर और तीसों बंदूकें भरकर कोट पर चढ़ बैठा। आधी रात के अंधकार में योद्धाओं के पाँव की आहट उसके सुनने में आई। आस्ट्रिया के सैनिक अचानक दुर्ग पर हमला करने की धारणा से अब तक पहाड़ की आड़ में छिपे बैठे थे। आवर्न ने बंदूक़ रखने के छेद से उनको देखा, और झटपट पाँच-छ बंदूक़ों से गोली चलाना शुरू किया। चार-पाँच आस्ट्रियन सैनिक घायल हुए। उन्होंने समझा; क़िले के रक्षक जाग्रत् हैं; इसलिये यहाँ हमारा वस नहीं चलेगा। ऐसा सोचकर इनके सेनापति ने दुर्ग पर आक्रमण करने का संकल्प छोड़ दिया। प्रातःकाल वह एक तोप खींच लाए; परंतु पर्वत का रास्ता ऐसा टेढ़ा था कि बंदूक़ रखने के छेद के सामने तोप रक्खे विना छुटकारा नहीं था। आवर्न ने चढ़ा ऊपरी बंदूक भरकर। गोली चलाना शुरू किया। उस समय ब्रिसलोड बंदूक अथवा गोलियों की व्यवस्था नहीं थी, इसलिये आस्ट्रियन समझ गए कि बहुत अधिक संख्या में सैनिक दुर्ग की रक्षा कर रहे हैं। इधर तोप का मुँह फेरकर बराबर जमाने और एक बार भी उसे छोड़ने का अवकाश आवर्न ने दुश्मनों को नहीं दिया। अतएव अनेक आस्ट्रियन सिपाही उसके हाथ से मारे

गए। आख़ीर में सेनापति ने पैदल लश्कर को दुर्ग पर चढ़ाई करने का हुक्म दिया। तीन बार सैनिकों ने प्रयत्न किया, परंतु वहाँ इतना भी मार्ग नहीं था कि तीन से अधिक आदमी एक साथ खड़े रह सकें। इसलिये वे दुर्ग को नहीं जीत सके। बहुत-से आस्ट्रियन सैनिक घायल हुए।

इधर आवर्न के पास गोला-बारूद समाप्त हो गया। उसने समय और दूर का हिसाब लगाकर देखा कि इतनी देर में भागे हुए दुर्ग-रक्षकों से फ्रांस की सेना को ख़बर मालूम हो गई होगी, और वे इस तरफ़ आते होंगे। अब इस पहाड़ी मार्ग पर आस्ट्रियन अपना क़ब्ज़ा कर लेंगे, तो भी फ़्रांस को कोई नुक़सान नहीं पहुँचेगा।

संध्या-समय आस्ट्रियन सेनापति ने क़िला सौंप देने की पुकार मचाई। तब आवर्न ने कहा—'अगर आप दुर्गवासियों को फ़्रांस के झंडे और हथियार के साथ अपनी सेना से मिलने जाने की आज्ञा दें, तो मैं आपको कल सवेरे यह क़िला सौंप दूँ। "सेनापति ने वायदा किया। दूसरे दिन वायदे के अनुसार इस पहाड़ी मार्ग में दुर्ग के सामने आस्ट्रियन सेना आकर खड़ी हुई। उसके बीच से इतना ही मार्ग रक्खा गया था कि एक-एक आदमी उसके बीच में होकर जाय। थोड़ी देर में क़िले का दरवाज़ा खुला, और उसमें से केवल एक ही फ़्रेंच-योद्धा बहुत-सी बंदूक़ों से लदा और हाथ से स्वदेश का झंडा फहराता हुआ बाहर निकला। यह

सैनिक और कोई नहीं, आवर्न ही था। आस्ट्रिया के सेनापति ने उससे पूछा—"दूसरे सिपाही पीछे आते हैं न ?" आवर्न ने कहा—"मैं ही दुर्ग का अध्यक्ष हूँ, और मैं ही सारी सेना हूँ। जिसमें गिनो, उसमें मैं ही हूँ।" यह बात सुनकर उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। उसने आवर्न को एक प्रशंसा-पत्र लिख दिया, और अपने सैनिकों से कहा—"धन्य है इस देश को, जहाँ के लोग देश के गौरव के खातिर ऐसा अद्भुत काम करने पर उतारू होते हैं। तुम भी इन-जैसे ही बनो।" यह कहकर आस्ट्रिया के सेनापति ने सारी बंदूकें एक मजदूर के सिर पर रखाकर आवर्न के साथ भेजीं।

बादशाह नेपोलियन ने जब यह हाल सुना कि आवर्न ने ऊँचा अधिकार लेने की इच्छा नहीं रक्खी, तब उसने उसे 'फ्रांस का सबसे बड़ा ग्रेनेडियर' की उपाधि दी। सन् १८०० ई० में जब आवर्न का स्वर्गवास रण-क्षेत्र में हुआ, तब नेपोलियन ने हुक्म दिया कि ग्रनेडियरों के पत्र से आवर्न का नाम काटा जाय। प्रतिदिन रात को नेपोलियन सिपाहियों की हाज़िरी लेते समय पहले आवर्न का नाम पुकारता था, और एक सैनिक नियमित रूप से बोलता था—"वह रण-क्षेत्र में, अनंत-यश की शय्या पर सो रहा है।"

इस प्रकार वीर आवर्न के असाधारण साहस का स्मरण

जाग्रत् रखकर नेपोलियन ने अपनी ग्रेनेडियर सेना को अतुल पराक्रमशाली बनाया था।

---

(८८)

उन्नति की कुंजी

जॉन हंटर विलायत के एक नामी डॉक्टर हो गए हैं। शस्त्र-विद्या में यह बड़े निपुण थे। इन्होंने शारीर विद्या में बहुत आविष्कार भी किए हैं। एक दिन किसी ने इनसे पूछा—"किन उपायों से आप इतनी उन्नति कर सके हैं ?"

डॉक्टर हंटर ने उत्तर दिया—"मेरा नियम ऐसा है कि किसी भी कार्य का आरंभ करने के पहले मैं खूब विचार कर देख लेता हूँ कि इस काम के करने की मुझमें सामर्थ्य है या नहीं ? यदि वह काम असाध्य होता है, तो मैं उसके लिये प्रयत्न नहीं करता, और यदि मुझसे हो सकनेवाला होता है, तो मैं उसके लिये पूरी-पूरी कोशिश करके उसे पूरा करता हूँ। किसी भी काम को हाथ में लेने के बाद चाहे जितने विघ्न आवें, पर मैं उसे अधूरा नहीं छोड़ता। इस नियम के कारण ही मैंने इतनी सफलता प्राप्त की है।"

---

(८६)

डोरनफ़ोर्ड का साहस

स्कॉटलैंड के दरिया में एक दिन तूफ़ान आया। किनारे पर एक छोटी नैया थी, और तट के पास ही एक पहाड़ था। तूफ़ान के ज़ोर से नैया पहाड़ के साथ टकराकर टूटने की तैयारी में थी। किनारे पर अनेक मछली-मार खड़े थे। ये सभी जानते थे कि नैया में बैठे हुए यात्री देखते-ही-देखते डूबकर मर जायँगे, परंतु इस तूफ़ान की तरंगों में डोंगी डालकर मुसाफ़िरों को बचाने का साहस किसी को नहीं हुआ।

कर्नल डोरनफ़ोर्ड इस समय आब-हवा की तब्दीली के लिये आज्ञा लेकर इस गाँव में आ बसे थे। उन्होंने अचानक यह दृश्य देखा। देखते ही उन्होंने कोट, बूट और टोप उतारकर एक डोंगी दरिया में डाली, और उसे चलाने का यत्न करने लगे। उन्हें नौका चलाना नहीं आता था, इसलिये उन्होंने ज़ोर से चिल्लाकर कहा—"किसी को चलाना आता हो, तो आओ, नहीं तो मैं अकेले ही उस नौका के मनुष्यों को बचाने का प्रयत्न करूँगा।"

इनका साहस देखकर किनारे पर खड़े हुए नौका-शास्त्र में प्रवीण मछली-मारों को भी शूरता चढ़ी। वे भी डोंगियाँ लेकर फ़ोर्ड के पीछे गए, और संकट में पड़े हुए मुसाफ़िरों को बचा लाए।

इस प्रकार एक लोकनायक की शक्ति और साहस के कारण कई लोगों के प्राण बचे।

---

(६०)

हेल विडियस की निर्भयता और सत्यनिष्ठा

रोम की राजसभा में हेल विडियस नाम का एक सत्यनिष्ठ और न्याय-परायण सभासद् था। एक दिन रोम के बादशाह वेस्पेसियन ने अमात्य-सभा द्वारा एक अन्याय-पूर्ण नियम जारी करने का इरादा किया, और इसी इरादे से हेल विडियस को इस सभा में आने से रोका। पर रोक देने पर भी उसे विश्वास नहीं हुआ। उसने विचार किया कि विडियस इस सभा में आए विना नहीं रहेगा। इसलिये उसने विडियस को लिख भेजा—"अगर तुम इस सभा में मेरे प्रस्ताव का विरोध करोगे, तो निश्चय ही तुम्हारा सिर कटवा दिया जायगा।"

हेल विडियस सच्चा साहसी और सत्यनिष्ठ पुरुष था। उसने बादशाह को नम्रता-पूर्वक लिख भेजा—"महाराजाधिराज! मैंने आपसे किस दिन कहा था कि मैं अमर हूँ? देवताओं और स्वदेश के लिये कर्तव्य-पालन करते हुए अगर आपके प्रस्ताव का खंडन करने का मौका आवेगा, तो आप कभी ऐसा विचार मन में न लाएँ कि मैं आपके

क्रोध के भय से ऐसा करने में हिचकूँगा। और, अगर आप मेरे इस सत्य आचरण का बदला लेने के लिये मेरा मस्तक कटवाएँगे, तो भविष्य की प्रजा हम दोनो के कामों का फ़ैसला करेगी।"

कैसा अपूर्व साहस है! कैसी अद्भुत न्याय-परायणता है! यदि हमारी व्यवस्थापिका सभा के सभासद् भी ऐसे ही स्वभाव के हों, तो देश का दुःख जल्दी ही मिट सकता है।

---

(६१)

एक विद्यार्थी की नियमितता

क्रूयर नाम का एक विद्यार्थी नियमितता के लिये पाठशाला में बहुत प्रसिद्ध था। एक दिन पाठशाला में उपासना करते समय सब विद्यार्थी इकट्ठे हुए, पर क्रूयर वहाँ नहीं था। उपासना के मुखिया ने थोड़ी देर उसकी राह देखी, और उपासना आरंभ नहीं की। इतने ही में यह विद्यार्थी आकर अपनी जगह पर बैठ गया। मुखिया ने कहा—"क्रूयर, तुझे अपनी जगह पर न देखकर मैंने समझा था कि घड़ी तेज़ चल रही है!'

सचमुच, उस रोज़ पाठशाला की घड़ी कुछ तेज़ चल रही थी।

इसी प्रकार जस्टिस महादेव गोविंद रानाडे के लिये कहा

जाता है कि वह वक़्त के इतने पाबंद थे कि जब कचहरी में पहुँचते थे, तभी वहाँ की घड़ी मिलाई जाती थी।

---

(६२)

अमेरिका के अध्यक्ष की सच्ची दयावृत्ति

अमेरिका की प्रजासत्ता-राज्य के अध्यक्ष एक बार अपनी राजसभा में जा रहे थे। इतने ही में इन्हें रास्ते में एक सुअर, कीचड़ में फँसा हुआ, दिखाई दिया। वह कीचड़ से बाहर निकलने की बहुत कोशिश कर रहा था, पर ज्यों-ज्यों कोशिश करता था, त्यों-त्यों कीचड़ में ज्यादा फँसता जाता था। उसकी यह दयाजनक दशा देखकर प्रेसीडेंट से रहा नहीं गया। आप अपनी राजदरबारी पोशाक के साथ ही कीचड़ में कूद पड़े, और सुअर को बाहर खींच लाए। इसके बाद आप कीचड़ से सने हुए उन्हीं कपड़ों से राजसभा में गए। अपने प्रमुख और अमेरिका के एक प्रकार के बादशाह की ऐसी हालत देखकर सभासदों को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने अध्यक्ष से सारा हाल पूछा। अध्यक्ष ने सब वृत्तांत शुरू से अख़ीर तक कह सुनाया। सुनकर सभासद् बहुत ख़ुश हुए, और अध्यक्ष की ख़ूब प्रशंसा करने लगे। कितने ही तो कहने लगे—"जब हमारे राज्य के अध्यक्ष दुःखी सुअर

पर इतनी दया करते हैं, तब इनके अमल में प्रजा के सुख का तो पूछना ही क्या है !"

अध्यक्ष ने कहा—"तुम लोग मेरी झूठी तारीफ करते हो। मैंने सुअर पर दया नहीं की, बल्कि अपने आपका दुःख मिटाया है। सुअर को कीचड़ में बुरी तरह फँसा देखकर मेरे मन में दुःख हुआ था। मैंने उसी दुःख को मिटाया है। इसमें मैंने सुअर के साथ नहीं, प्रत्युत अपने शरीर के साथ भलाई की है; क्योंकि उसे बाहर निकालते ही मेरा दुःख जाता रहा।"

असल में जो पराए दुःख को अपना दुःख गिनते हैं, वे ही महात्मा गिने जाते हैं। सच्ची समवेदना ही सच्चा धर्म है। इसके पालनेवाले धन्य हैं !

---

(६३)

सच्ची स्वदेशभक्ति और आज़ादी की

एक बार अमेरिका और इँगलैंड का बड़ा भारी युद्ध हुआ था। इस युद्ध को अमेरिका-वासियों की स्वतंत्रता का युद्ध कहते हैं। इस युद्ध का कारण यह था कि अमेरिका इँगलैंड का रुपए-पैसे की मदद देता था, और महसूल भरता था, पर देश के व्यवहार में उसका ज़रा भी हाथ नहीं था। इसी विषय पर उसका इँगलैंड-वासियों के साथ मतभेद हो

गया। अमेरिका की स्त्रियों ने इस प्रसंग पर वहाँ के पुरुषों को उत्साह और हर प्रकार की मदद देने में कोई कमी नहीं की। उन्होंने इँगलैंड में बने हुए माल को अपने देश में आने से रोका, सब उद्योग-धंधे अपने हाथ में लिए। चाय का उनको भारी व्यसन था, और वह विलायत से आती थी। परंतु उन्होंने अपनी टेक रखने के लिये, अपने देश का गौरव बढ़ाने के लिये और अपने देश को आज़ाद करने के लिये विलायती चाय का बहिष्कार कर दिया, और उसके बदले चाहे जैसे पत्तों को उबालकर पीना शुरू किया, और इसका नाम रक्खा 'आज़ादी की चाय'।

धन्य है अमेरिकन स्त्रियों के स्वदेश-प्रेम और आत्मसंयम को, जिन्होंने इस दर्जे का त्याग किया। अगर हमारे देश की स्त्रियाँ भी केवल खादी का ही उपयोग करने लग जायँ, तो ग़रीब भारत का ६०-७० करोड़ रुपया विदेश जाने से बचे, और इस बचत से ग़रीबों का कितना भला हो! प्रत्येक स्त्री-पुरुष को यह बात ध्यान में रखने लायक़ है।

---

(६४)

सत्यपरायण मनुष्य का बल किसमें है ?

योरप में स्टीवन नाम का एक धार्मिक पुरुष हो गया है।

वह बहुत ही उदार, निर्भय, न्याय-परायण और सत्यनिष्ठ था। उसके मित्रों ने एक बार उससे पूछा—"यदि धर्मद्रोही पुरुष तुम पर हमला करें, तो तुम क्या करोगे ?"

स्टीवन ने उत्तर दिया—"मैं उस समय मज़बूत क़िले के अंदर सुरक्षित रूप से बैठा रहूँगा।"

यह बात किसी तरह उसके शत्रुओं के कानों में पहुँच गई। एक दिन उसे अकेले जाते हुए देखकर शत्रुओं ने सचमुच घेर लिया, और पूछा—"बताओ गुरुजी! अब तुम्हारा क़िला कहाँ है ?"

स्टीवन ने अपनी छाती पर हाथ ठोककर कहा—"यह मेरा क़िला है। इस पर कभी कोई मनुष्य हमला नहीं कर सकता। तुम मेरे क्षण-भंगुर शरीर को काट सकोगे, परंतु ईश्वर के प्रभाव से भरी हुई मेरी आत्मा का स्पर्श भी नहीं कर सकोगे। तुम्हारे हथियार देखकर मैं ज़रा भी नहीं डरता। मेरे इस विश्वास-रूपी अभेद्य दुर्ग में जब तक मैं सुरक्षित हूँ, तब तक तुम मेरा कुछ नहीं कर सकते।"

स्टीवन की ऐसी निर्भयता, तेजस्विता और धार्मिकता देखकर शत्रु आश्चर्य में होकर चले गए। इस महात्मा का स्वर्गवास सन् १०५८ में हुआ!

सौभाग्य की बात है कि हमारे देश में भी महात्मा गांधी के सदुपदेशों से कई देश-भक्त युवक निर्भयता के साथ सत्याग्रह का भाव बताते हैं, और अपनी जान हथेली पर

लेकर देश-सेवा के महान् व्रत में लगे हैं। ईश्वर इनको पग-पग पर सफलता प्रदान करें।

---

(६५)

एक कप्तान की आदर्श कर्तव्यपरायणता

एक बार विलायत के समुद्र में एक जहाज का तला फट गया, और जहाज डूबने का प्रसंग आ गया। इस प्रसंग पर जहाज के कप्तान ने सभ्यता के नियमानुसार पहले स्त्रियों और बालकों को तथा पीछे से कई पुरुष-यात्रियों को खलासी के साथ डोंगी में बिठाकर किनारे भेजने की व्यवस्था की। इसके बाद उसने बाकी बचे खलासियों को ज़िंदगी बचानेवाला एक-एक पट्टा पहनाकर कहा—"तुम इनके सहारे तैरकर किनारे पहुँच जाओ।" स्वयं कप्तान ने भी ऐसा ही एक पट्टा पहना, और वह जहाज पर से समुद्र में कूदने ही वाला था कि इतने में एकाएक उसकी नज़र जहाज के एक बालक पर पड़ी। उसने आश्चर्य में होकर बालक से पूछा—"तू कौन है? अब तक डोंगी में बैठकर किनारे क्यों नहीं गया?"

बालक ने कहा—"मेरे पास किराया देने को कुछ नहीं था, इसलिये मैं चुपचाप जहाज पर आ बैठा था, और कहीं पकड़ा न जाऊँ, इस भय से अब तक एक कोने में छिपा बैठा था।"

बालक की बात सुनकर कप्तान ने मन में विचार किया—"अब मेरे पास एक ही ज़िंदगी बचाने का पट्टा है। अगर मैं इसे बचाने जाता हूँ, तो मेरी जान जाती है। मेरे बालक छोटे-छोटे बच्चे हैं; मेरे बिना उनकी बहुत दुर्दशा होगी। परंतु कप्तान के लिहाज़ से इस जहाज़ के प्रत्येक जीव को यथासंभव बचाना मेरा कर्तव्य है; इसलिये स्त्री-बच्चे की चिंता ईश्वर के हाथ में सौंपकर मैं अपने कर्तव्य का पालन करूँ।"

ऐसा विचारकर कप्तान ने तुरंत ही अपनी कमर से पट्टा उतारकर बालक को पहनाया, और तैरने के वास्ते उसे जल में उतारा।

इसके बाद यह कर्तव्य-निष्ठ कप्तान थोड़ी ही देर में जहाज़-सहित जल में डूबकर मर गया।

धन्य है इस कप्तान को, जिसने अपनी संतानों और अपने प्राणों का मोह छोड़कर एक अनजान बालक की प्राण-रक्षा के लिये अपने प्राण विसर्जन कर दिए। ऐसे ही कर्तव्य-निष्ठ महात्माओं से लोक-कल्याण और देश की उन्नति होती है।

---

(६६)

एक सिपाही की निष्काम सेवा

मार्स्टन मूर के युद्ध में सेनापति सिड्नी घायल होकर

ज़मीन पर गिर पड़ा। यह देखकर एक घुड़सवार सिपाही ने पास आकर सेनापति पर हमला करनेवाले सिपाही को लड़कर भगा दिया, और अपने सेनापति को घोड़े पर बिठाकर पीछे के एक निर्भय स्थान में ले गया।

सिपाही के इस काम से सिड्नी बहुत प्रसन्न हुआ, और कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसने सिपाही से पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

साहसी सिपाही ने नम्रता-पूर्वक जवाब दिया—"माफ़ कीजिए साहब, मैंने इनाम के लिये यह काम नहीं किया है।"

यह कहकर सिपाही बिना नाम बताए पीछे लौट आया। सिड्नी ने बहुत तलाश की, परंतु फिर अपने उपकारी और प्राणदाता सिपाही का उसे पता नहीं लगा।

---

(६७)

एक कप्तान की कर्तव्य-निमग्नता

क्रिमिया के युद्ध में जब रूस अकेला ही तुर्किस्तान, इँगलैंड, फ्रांस और सार्डिनिया के साथ युद्ध कर रहा था, तब एक दिन सेवास्टिनोपल के घिरे हुए क़िले में रूस के बादशाह निकोलस के पास एक ज़रूरी समाचार भेजने की ज़रूरत पड़ी। रूस के सेनापति ने एक कुलीन रशियन कप्तान के हाथ में मुहर लगा हुआ एक पत्र दिया, और कहा—

"यह पत्र बादशाह के हाथ में देना। रात-दिन चलना, ज़रा भी कहीं मत ठहरना, और जल्दी वहाँ पहुँचना।"

आज्ञा पाकर कप्तान रवाना हुआ। रास्ते में प्रत्येक दस माइल पर घोड़ा बदलने की व्यवस्था की गई। जितने ज़ोर से घोड़े दौड़ाए जा सकते थे, उतने ज़ोर से दौड़ाते हुए गाड़ी चलने लगी। जहाँ घोड़े बदलने का स्थान आता था, वहाँ घोड़े बदलने में दो-एक मिनट ठहरना पड़ता था। ये दो-एक मिनट भी कप्तान के लिये बहुत भारी हो जाते थे। परंतु जब गाड़ीवान कहता कि गाड़ी तैयार है, तब वह फ़ौरन् ही हुक्म देता कि जल्दी दौड़ाओ।

इस तरह कितने ही रात-दिन मुसाफ़िरी करके यह कप्तान सेंटपिटर्सबर्ग के महल में पहुँचा, और बादशाह के हाथ में पत्र दिया। थकावट के कारण इसका दिमाग़ ठिकाने नहीं रहा। बादशाह के देखते ही यह एक कुरसी पर बैठ गया, और बैठते ही इसे मूर्च्छा या निद्रा आ गई।

पत्र पढ़ लेने के बाद बादशाह ने देखा, कप्तान आँखें मींचकर कुरसी पर पड़ा है। बादशाह ने उसे बहुत आवाज़ें दीं, बहुत झिंझोरा, पर वह जगा नहीं। सबने सोचा, यह मर गया है। परंतु बादशाह ने नाड़ी और छाती पर हाथ रखकर देखा, तो मालूम हुआ कि यह मरा नहीं है, पर घोर निद्रा में सो रहा

है। इसके बाद उसने कप्तान के कान के पास मुँह ले जाकर कहा—"महाशय! गाड़ी तैयार है।" ये शब्द कान में पड़ते ही कप्तान ने अपनी आगे की जेब, जिसमें पहले बादशाह का पत्र रक्खा था, खूब सँभाली, और उसे दबा-कर उठ बैठा, और कहने लगा—"खूब जोर से गाड़ी हाँको।" परंतु थोड़ी ही देर में उसने देखा कि सामने न गाड़ी है, और न गाड़ीवान, बल्कि वह राजमहल में प्रसन्न-मुख खड़े हुए बादशाह के सामने कुरसी पर बैठा है! यह दृश्य देखकर वह एकदम लज्जित होकर खड़ा हो गया। बादशाह ने उसका हाथ पकड़कर सम्मान के साथ कहा—"कप्तान! अपनी जन्म-भूमि और बादशाह के काम के लिये जब तक रशियन अफ़सरों के शरीर में इतनी कर्तव्य-दृढ़ता रहेगी, तब तक रूस का गौरव कभी नष्ट नहीं होगा। मैं चाहता हूँ, तुम-जैसे ही कर्तव्य-परायण, दृढ़-संकल्पी अफ़सर इस देश का गौरव बढ़ावें।"

---

(६८)

सर विलियम नेपियर का वचन-पालन

एक दिन इतिहास-लेखक सर विलियम नेपियर अपने घर से बहुत दूर घूमने गए। वहाँ इन्होंने देखा कि एक लड़की रास्ते के एक तरफ़ बैठी हुई रो रही है। रोने का

कारण पूछने पर लड़की ने जवाब दिया—"मेरे हाथ से मिट्टी का घड़ा गिरकर फूट गया है। हम बहुत ग़रीब हैं। मेरी माता क्रोध में आकर मुझे मारेगी। क्या आपको घड़ा जोड़ना आता है?"

सर विलियम ने कहा—"घड़ा जोड़ना तो मुझे नहीं आता, परंतु नया घड़ा ख़रीदने के लिये तू जितने पैसे चाहे, मैं दे सकता हूँ।"

यह कहकर सर विलियम ने जेब में हाथ डाला, पर उसमें कुछ भी न मिला। तब वह बोले—"आज मैं पैसे लाना भूल गया हूँ। कल तू इसी समय यहाँ आना, मैं तुझे पैसे दूँगा। अपनी माता से यह बात कह देना, वह तुझे मारेगी नहीं।"

दूसरे दिन सर विलियम के पास एक ख़ास मित्र का पत्र आया। उसमें लिखा था—"मैं लंबे सफ़र को जाता हूँ, आप पास के स्टेशन पर मुझसे ज़रूर मिलिएगा।" सर विलियम ने जो समय लड़की को पैसे देने के लिये बताया था, वही समय स्टेशन जाकर मित्र से मिलने का था। अब विलियम बड़ी दुविधा में पड़े। अब क्या करना चाहिए? बहुत विचारने के बाद उन्होंने निश्चय किया कि वचन पूरा करना ही लाज़िम है। अतएव वह ठीक वक़्त पर बालिका को पैसे देने गए, और मित्र के पास नौकर को पत्र देकर भेजा।

हमारे यहाँ के बड़े-बड़े अफ़सरों, ओहदेदारों, जागीरदारों, साहूकारों और ग्रंथकारों को इस उदाहरण से शिक्षा लेनी चाहिए।

---

(६६)

भक्त गदाधर भट्ट और कपटी महंत का उद्धार

परमभक्त गदाधर भट्ट बंगाल के एक प्रसिद्ध पौराणिक थे। इनके पास बहुत-से लोग भागवत की कथा सुनने आते थे। इनकी वाणी में इतना असर था कि कथा सुनते-सुनते अनेक श्रोताओं की आँखों से आँसू निकलने लगते थे। एक दिन एक भक्ति-हीन महंत भी इनकी कथा में गया। भट्टजी ने इसे प्रेम-पूर्वक अपने पास बिठाया। परंतु इसका मन ऐसा कठोर था कि कथा सुनकर सारे श्रोताओं की आँखों से आँसू टपकने लगे, पर इसके नेत्रों में आँसू की एक बूँद भी नहीं आई। यह अपने दुपट्टे के खूँट में पिसी हुई मिरचें बाँध लाया था, उन्हीं को आँख में लगाकर इसने आँसू निकाले।

यह बात जब भट्टजी के कानों में पहुँची, तब उन्होंने महंत की प्रशंसा करते हुए कहा—"मैं एक दिन इनसे मिलने के लिये इनके मठ जाऊँगा।"

कुछ दिनों बाद भट्टजी महंतजी के पास गए, और उनसे

लगे—"महंतजी महाराज ! आपको धन्य है ! आपकी भगवान् में प्रीति है। तभी तो आप कथा सुनने पधारे थे। प्रेमाश्रु बरसाना चाहिए, यह भी आप जानते हैं। पूर्व-जन्म के किसी कर्म के फल से प्रेमाश्रु बरसाने में देर लगी, इसलिये आपने क्रोध करके आँखों को दंड देने का प्रयत्न किया।"

सरल-हृदय, भक्त गदाधर भट्ट को किसी पर भी क्रोध नहीं आता था, और न वह किसी का तिरस्कार करते थे। महंत की कपटता में भी एक अच्छी वस्तु की तरफ़ सूक्ष्म रूप से आकर्षण रहा था, उसी पर ध्यान देकर तथा दोषों की तरफ़ न देखकर भट्टजी ने महंत की भलाई करने का प्रयत्न किया। सच है, भगवान् की तरह भक्त भी थोड़े ही में संतोष कर लेते हैं।

भक्त गदाधर भट्ट के स्वभाव से महंत मुग्ध हो गया। मेरे अपराध का भट्टजी ने इतना अच्छा अर्थ किया, यह सोचकर महंत लज्जित हुआ, और उसका हृदय पिघल गया। वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा, और महात्मा गदाधरजी के चरणों में गिर पड़ा। उसी दिन से उसका स्वभाव बदल गया, और वह ईश्वर का सच्चा भक्त बन गया।

---

(१००)

दीन से दीवान और कृतज्ञता का आदर्श

जयप्रकाशलाल एक बहुत ग़रीब मनुष्य का पुत्र था। गया की कचहरी के एक दयालु कारकुन की संरक्षकता में यह विद्याभ्यास करता था। पढ़ने में इसका अधिक ध्यान और लगन देखकर कारकुन इसे दो बार के भोजन के अतिरिक्त एक पैसा भी चबेनी के लिये देता था। इस समय गया की पाठशाला में गाडफ्रे नाम के एक शिक्षक थे। वह भी जयप्रकाश का विद्या-व्यसन देखकर उसे बहुत चाहते और उस पर खास तौर से ध्यान रखते थे।

निर्वाह के लिये थोड़े ही दिनों में जयप्रकाश को पाठशाला छोड़कर नौकरी तलाश करनी पड़ी। डुमरावन-राज्य में वहाँ के महाराज-कुमार को हिंदी पढ़ाने के लिये यह २५) मासिक पर मुक़र्रर हुआ। कुछ मास बीतने के बाद जयप्रकाश ने महाराज से कहा—"महाराज! आपके कुमार कुछ भी नहीं पढ़ते, और आपको मेरे मासिक वेतन के लिये व्यर्थ ही खर्च करना पड़ता है। ऐसा वेतन लेना मुझे उचित नहीं। परंतु मेरे पास निर्वाह का दूसरा कोई साधन नहीं, इसलिये आप कृपा करके मुझे कोई दूसरा काम सौंपिए।"

महाराज जयप्रकाश की इस बात से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मन में सोचा, यह मनुष्य निरहाम-खोर और सच्चा

है। यह सोचकर महाराज ने उसे ५०) मासिक पर बिल-क्लर्क बना दिया। यह एक सभा का काम था। इस सभा में ऐसी व्यवस्था थी कि जितने रुपए इस सभा के खर्च के लिये मंजूर होते थे, वे सब मंजूर होने के बाद जयप्रकाश के पास जाँच के लिये आते थे, और उसकी सही होने के बाद तनख़्वाह बँटती थी। एक बार सात हज़ार रुपयों का एक बिल भूल से दो बार पास हो गया। सही करते समय जयप्रकाश ने यह भूल पकड़ी, और बिल को रोका। राज्य के जिस कर्मचारी की यह भूल थी; उसने जयप्रकाश से कहा—"ये सात हज़ार रुपए मैं आपको दे दूँ; पर यह बात महाराज के कानों में नहीं पहुँचनी चाहिए।"

जयप्रकाश यदि चाहता, तो सात हज़ार रुपए लेकर अपना मतलब बनाता। पर उसने ऐसा नहीं किया। वह ईमानदार था, सच्चा था, स्वामिभक्त और कर्तव्यशील था। अतएव लोभ से वह ज़रा भी विचलित नहीं हुआ। उसने साफ कह दिया—"मैं अपने मालिक से यह बात कभी नहीं छिपाऊँगा।"

अंत में उसने महाराज से यह बात कह दी, और साथ ही यह भी अर्ज़ कर दी कि भूल से दो बार बिल पास हो जाना संभव है।

महाराज इस बर्ताव से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने धीरे-धीरे जयप्रकाश को दीवान के पद पर पहुँचा दिया, और

१५००) मासिक वेतन नियत किया। जयप्रकाश ने कहा—"मुझे १५००) की जरूरत नहीं, मुझे तो १५००) के बजाय ५००) आप दें; परंतु पुराने दीवानों की तरह एक गाँव भी मुझे इजारे में बख्शें।"

ऐसी ही व्यवस्था हो गई, और जयप्रकाश को एक गाँव इजारे में मिल गया। जयप्रकाश दीवान होकर रियासत का काम भली भाँति करने लगा। अन्याय-मार्ग से उसने रियासत का एक पैसा भी नहीं लिया, और अपने इजारे के गाँव की आमदनी से अच्छा पैसा कमाया।

इसके बाद जयप्रकाश ने अँगरेज-सरकार से बर्मा में पचास हजार बीघे पड़ती जमीन और जंगल इजारे में लिए, और उनमें बिहार के किसानों को बसाया। इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते इसकी वार्षिक आमदनी ढाई लाख रुपए के लगभग हो गई थी।

जयप्रकाश इतने ऊँचे दर्जे पर पहुँच गया था, पर उसने मन में अपने ऊपर उपकार करनेवाले फारकुन को कभी भूला न था। वह समय-समय पर उसे रुपए-पैसे की मदद देता था। एक बार इसने फारकुन को सारे तीर्थों की यात्रा अपने खर्च से कराई थी। फारकुन जब मिलता, तभी वह उसके चरणों में मस्तक झुकाता था। यहाँ तक कि महाराज के दरबार में भी ऐसा करने में संकोच नहीं करता था। गाडफ्रे की पत्नी को भी वह प्रतिमास नियमित रूप

भिजवाता था, और उनके पुत्रों के विद्याभ्यास का सारा ख़र्च अपने ऊपर ले रक्खा था। सच है, उद्योगी और कृतज्ञ मनुष्य ऐसे ही होते हैं।

---

(१०१)

लुक़्मान हकीम का मालिक और कृतज्ञता का आदर

सुप्रसिद्ध लुकमान हकीम बचपन में ग़ुलाम थे। एक दिन इनका सेठ ककड़ी खाने लगा। ककड़ी बहुत कड़ुई निकली, इसलिये उसने लुक़मान को वह ककड़ी दी, और कहा—"ले, इसे तू खा।"

सेठ ने सोचा था, ऐसी कड़ुई ककड़ी लुक़मान कभी नहीं खाएगा; परंतु लुक़मान ज़रा भी मुँह बिगाड़े बिना सारी ककड़ी खा गया। यह देखकर सेठ ने पूछा—"यह ज़हर की तरह कड़ुई ककड़ी तूने किस तरह खाई ?"

लुक़मान ने उत्तर दिया—"आपने मेरे साथ आज तक जैसा बर्ताव किया है, उससे मुझे कभी ऐसा मालूम नहीं हुआ कि मैं आपका बिका हुआ ग़ुलाम हूँ। आपके हाथ से मेरे ऊपर बहुत-से उपकार हुए हैं। तो फिर आपकी बख़शी हुई कड़ुई ककड़ी मैं क्यों न आनंद-पूर्वक खाता ?"

सेठ भी बहुत सज्जन था। वह लुक़मान के गुणों से

पहले ही से उसे चाहता था। इस उत्तर से उसने जाना कि इस गुलाम ने मुझे आड़ में एक जरूरी उपदेश दिया है। भगवान् की दया अपार होती है; और समय-समय पर भगवान् जो दुःख देता है, उसे जरा भी विचलित न होकर किस तरह सहने की जरूरत है, यह बात आज मैंने लुक़मान के वचनों से सीखी है। ऐसा सोचने के बाद सेठ को विश्वास हुआ कि लुक़मान अब गुलाम के तौर पर रहने लायक नहीं है। इसने आज के बर्ताव से मेरे मन में पवित्र भाव उत्पन्न किया है; इसलिये यह तो मेरे लिये गुरु के समान पूज्य है।

ऐसा विचारकर सेठ ने लुक़मान को फ़ौरन् गुलामी से मुक्त कर दिया।

स्वामी और सेवक ऐसे ही होने चाहिए।

---

(१०२)

महात्मा हुसैन और क्रोध का दमन

महात्मा हुसैन हजरत मुहम्मद के प्रिय शिष्य और जमाई महात्मा अली के पुत्र थे। यदि कोई अन्याय का काम होता, तो उसे देखकर उन्हें बहुत क्रोध आ जाता था। परन्तु ब्राह्मण के क्रोध की तरह इनका भी क्रोध फौरन ही शांत हो जाता था। रात-दिन मन में घुटा करे, और पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहे, ऐसा क्रोध या वैर इनमें नहीं था।

एक दिन एक ग़ुलाम गरम जल लेकर जा रहा था। उसकी असावधानी से वह जल हुसैन के पाँवों पर छलक पड़ा। हुसैन ग़ुस्से में होकर चिल्ला उठे। ग़ुलाम समझ गया कि सैयद साहब का पाँव जल गया है। यह देखकर उसने पानी का घड़ा तुरंत नीचे रख दिया, और क़ुरान की एक आयत पढ़ने लगा। वह आयत यह थी कि—"जो मनुष्य क्रोध को दबाता है, वही स्वर्ग जाता है।"

यह वाक्य सुनकर हुसैन का क्रोध तुरंत जाता रहा। उन्होंने उसी समय कहा—"मैं अब क्रोध में नहीं हूँ।"

इसके बाद ग़ुलाम ने इस आयत का अगला हिस्सा कहकर सुनाया कि—"जो माफ़ी देते हैं, वे भी स्वर्ग जाते हैं।"

हुसैन ने कहा—"मैंने तुझे माफ़ी बख्शी।"

ग़ुलाम ने आयत का आख़िरी चरण कहकर सुनाया कि—"भगवान् परोपकारी मनुष्य को चाहता है।"

महात्मा हुसैन का मन स्वभाव से ही बहुत नरम था। ग़ुलाम के मीठे और हितकारी वचनों से उनका क्रोध सहज ही में जाता रहा। इससे उन्होंने दास को अपना उपकारी मित्र माना, और कहा—"तू आज से ग़ुलाम नहीं है।"

जो क्षमाशील है, वही महात्मा है।

---

(१०३)

स्वामी विवेकानंद और मुक्ति

स्वामी विवेकानंदजी ने विलायत और अमेरिका में वेदांत-धर्म का खूब प्रचार किया। इसके बाद आपने भारतवर्ष में आकर निश्चय किया कि हमारे मठ के साधुओं को देश के प्रत्येक स्थान में भ्रमण करके श्रीरामकृष्ण परमहंस के उदार सिद्धांतों का प्रचार करना चाहिए। इस उद्देश से आपने स्वामी विरजानंद से कहा—"आप पूर्व-बंगाल के ढाका-नगर में जाकर उपदेश दीजिए।"

स्वामी विरजानंदजी एकांत-सेवी और निवृत्ति-परायण साधु थे। उन्होंने ऐसे जंजाल में पड़ना पसंद नहीं किया। इसलिये पहले तो बात उड़ाते हुए बोले—"स्वामीजी! मैं ढाका में जाकर क्या उपदेश दे सकूँगा? मैं तो कुछ नहीं जानता।"

स्वामी विवेकानंदजी ने कहा—"तो तुम वहाँ जाकर यही उपदेश देना। यह तो बहुत बड़ा उपदेश है। उपनिषद् भी कहते हैं कि जो कोई ऐसा कहता है कि मैंने ब्रह्म को नहीं जाना, उसी ने उसको जाना है।"

परंतु विरजानंदजी को इससे संतोष नहीं हुआ। उन्होंने साफ़ कह दिया—"स्वामीजी! मुझे अभी थोड़े समय तक साधना करके मुक्ति के लिये तैयारी करने दो।"

इतना सुनते ही महान् गुरु विवेकानंद को क्रोध आ गया,

और उन्होंने जोर से कहा—"अधिकार पाए विना अगर तुम अपनी ही मुक्ति ढूँढ़ने जाओगे, तो नरक में पड़ोगे। सबसे ऊँचा मुक्ति-पद तो दूसरों की सेवा करने ही से मिलता है। इसलिये ऊँचे-से-ऊँचा मुक्ति-पद पाना है, तो दूसरों की सेवा करो। यही वड़ी-से-वड़ी साधना है।"

थोड़ी देर बाद स्वामी विवेकानंदजी ने जरा शांत होकर फिर कहा—"काम करो बच्चा, तन-मन-धन से सेवा करो। यही मुख्य वस्तु है। फल की अभिलाषा मत रक्खो। अगर दूसरों की सेवा करते हुए नरक में जाना पड़े, तो क्या ? स्वार्थ साधकर मिले हुए राज्य से तो नरक में जाना ज्यादा अच्छा है।"

इसके बाद स्वामी विरजानंद ने विवेकानंद की आज्ञा मस्तक पर चढ़ाकर उपदेश का काम शुरू किया।

---

(१०४)

स्वामी विवेकानंद और देश-सेवा का मर्म

श्रीयुत सखाराम गणेश देउस्कर "हितवादी" पत्र के अधिपति थे। आपने "देश की वात" नाम का सुप्रसिद्ध ग्रंथ भी बँगला में लिखा था। एक दिन आप अपने दो मित्रों को लेकर स्वामी विवेकानंदजी के दर्शन करने गए। स्वामीजी को मालूम हुआ कि इन मित्रों में से एक पंजाब-निवासी है। उस

समय उस प्रांत में दुर्भिक्ष था, इसलिये स्वामीजी ने पंजाबी से पूछा—"वहाँ के लोगों की क्या दशा है, और उनका दुःख मिटाने का क्या उपाय है ?" पंजाबी ने स्वामीजी की बात का यथोचित उत्तर दिया।

इसके बाद स्वामीजी ने लोगों को शिक्षा देने और उनकी नैतिक तथा सामाजिक उन्नति के विषय में बातचीत की। थोड़ी देर में पंजाबी स्वामीजी से विदा माँगकर जाने लगा। उस समय उसने खेद-पूर्वक, किंतु विनय के साथ कहा—"महाराज ! हम तो धर्म के बड़े-बड़े उपदेश सुनने की आशा से आपकी सेवा में आए थे, पर आपने तो दुर्भाग्य-वश साधारण विषय पर ही बातचीत की। आज हमारा दिन व्यर्थ ही गया।"

स्वामीजी ने शांत और गंभीर होकर उत्तर दिया—"भाई ! जब तक मेरे देश का एक कुत्ता भी भूखा रहेगा, तब तक मेरा धर्म है कि उसकी सँभाल करूँ, और उसे खिलाऊँ। इसके सिवा सारे काम या तो अधर्म हैं या झूठे धर्म।"

तीनो दर्शक इन मार्मिक वचनों को सुनकर स्तब्ध हो गए, और देउस्कर महाशय के संस्कृत हृदय पर तो इन शब्दों से सच्चे स्वदेशाभिमान की गहरी छाप बैठ गई।

---

(१०५)

माता और संतान की शिक्षा

एक दिन फ्रांस के बादशाह नेपोलियन ने विदुषी नारी कॅपेन से बालकों की शिक्षा पर बातचीत करते हुए पूछा—“शिक्षा देने की पुरानी रीति अच्छी नहीं है। तुम्हारे अभिप्राय के अनुसार इस शिक्षा-पद्धति में किसकी कमी है ?”

कॅपेन ने फ़ौरन् जवाब दिया—“माताओं की।”

इस उत्तर का नेपोलियन पर बड़ा असर हुआ। उसने कहा—“बाई साहब ! आपने सचमुच एक ही शब्द में मेरे सवाल का जवाब दिया है। आपका कहना बिलकुल सच है। अपने बच्चे अच्छी तरह शिक्षित हो सकें, माताओं को ऐसी शिक्षा देना अत्यंत आवश्यक है।”

---

(१०६)

ख़िताब और सज्जनता

विलायत के बादशाह पहले जेम्स ने अपना भांडार भरने के लिये एक धंधा शुरू किया। धंधा यह था कि वह नक़द रुपए लेकर लोगों को उमराव की पदवी देता था। परंतु वह यह भी जानता था कि मेरे बनाने से कोई उमराव नहीं बन सकता। सच्चा उमराव बनने के लिये अमीरी स्वभाव, उदारता और वीरता आदि गुण होने चाहिए, अतएव इन्हीं विचारों से वह स्पष्ट कहा करता था—“मैं

किसी भी मनुष्य को लॉर्ड या उमराव बना सकता हूँ, पर सज्जन या सद्गृहस्थ नहीं बना सकता।"

सच बात है। सद्गृहस्थ का पद उमराव से बहुत श्रेष्ठ होता है।

---

(१०७)

महापुरुष का विनोद

ईसाई-धर्म के एक बड़े महात्मा सेंट जॉन एक दिन अपने घर की छत पर बैठे हुए एक पक्षी को हाथ में लिए खेल रहे थे। उनका यह खेल बिलकुल बालकों का-सा था। वह पक्षी को वे छाती से लगाते जाते थे, और इसमें बड़ा सुख मान रहे थे।

इसी समय एक शिकारी उधर से निकला। एक महापुरुष को अपना अमूल्य समय इस खेल में लगाते देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने महात्माजी से पूछा—"आप बड़े महात्मा मालूम होते हैं, परंतु इस खेल में अपना समय व्यर्थ खो रहे हैं, इसका क्या कारण है?"

महात्माजी ने शिकारी के आश्चर्य का कारण समझ लिया। बोले—"शिकारी! तुम अपने धनुष को हमेशा चढ़ा हुआ क्यों नहीं रखते?"

शिकारी ने उत्तर दिया—"ऐसा करने से धनुष का ज़ोर कम हो जाता है।"

महात्माजी बोले—"ठीक कहते हो। मेरे मन की भी ऐसी ही दशा है। अगर मैं इसे किसी बड़े काम में दिन-भर लगाए रक्खूँ, और निर्दोष विनोद द्वारा इसे थकने न दूँ, तो इसकी ताकत भी कम हो सकती है।"

सचमुच बात बड़े उपदेश की है। मन को हमेशा चंचल या सदैव काम में लगाए रखने से उसका बल कम हो जाता है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि उसे थोड़ा-थोड़ा विनोद में भी लगाया जाय। इससे कई लाभ होते हैं, और सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि शरीर की तंदुरुस्ती क़ायम रहती है।

---

(१०८)

ड्यूक ऑफ़् वेलिंगटन का निद्रा पर क़ाबू

ड्यूक ऑफ़् वेलिंगटन विलायत के एक प्रतापी सेनापति थे। नींद पर इनका बड़ा भारी काबू था। बिस्तर पर सोते ही इनको ऐसी गहरी नींद आती कि उठने के समय तक उसमें ज़रा भी विक्षेप नहीं होता था।

एक बार यह अपने घर में "कैंप बेड" अर्थात् छावनी में काम आनेवाले तंग पलँग पर सो रहे थे। इन्हें सोता हुआ देखकर एक सन्नारी ने, जो इनकी मित्र थी, पूछा—"आप

ऐसे तंग पलँग पर किस तरह सो जाते हैं ? इस पर तो करवट बदलने की भी जगह नहीं ?"

वेलिंगटन ने उत्तर दिया—"जब मुझे करवट बदलनी पड़ेगी, तब मैं समझ लूँगा कि मेरे उठने का समय हो गया।"

अधिकांश मनुष्य आलस से अँगड़ाइयाँ और जमुहाई लेते हुए करवट बदल-बदलकर घंटों तक खर्राटे लिया करते हैं। इसका शुमार शांत और गहरी नींद में नहीं है। बल्कि शांत और गहरी नींद तो वही है, जैसी नेपोलियन और वेलिंगटन की होती थी। ऐसी ही निद्रा चित्त को अधिक शांति देती है।

---

(१०६)

जातीय भाव और रूसी प्रजा का सर्वस्व-त्याग

सन् १८१२ ईस्वी में नेपोलियन बोनापार्ट ने अपनी पसंद के चार लाख योद्धाओं को लेकर रूस पर चढ़ाई की। सभी योद्धा वीर और दिलावर थे। युद्ध हुआ। इस युद्ध में नेपोलिय ने रूस को परास्त करके रूस की प्राचीन राजधानी मास्को पर अधिकार जमा लिया। इस समय स्वदेश-भक्त रूसियों ने करोड़ों रुपए की मिलकियत के साथ उस सुंदर नगर को भस्मीभूत कर डाला, और फ्रेंच लोगों को असह्य ठंड के मौसिम में आश्रय-हीन बना दिया। दुश्मनों को हैरान करने

के लिये इन्होंने सैकड़ों वर्षों की इकट्ठी की हुई तस्वीरें, पुतले, कारीगरी के नमूने, पुस्तकालय, सरदारों के वैभव-संपन्न महल बात-की-बात में, ज़रा भी संकोच किए बिना, नष्ट कर डाले। रूसी किसानों ने भी शत्रुओं को आते देखकर गाँवों का इकट्ठा किया हुआ अन्न जला दिया, और घास की गंजियों में जलती हुई मशालें लगा दीं। इस काम में उनको मरने तक का मौक़ा आया, पर ज़ातीय भाव के सामने उन्होंने इसकी ज़रा भी परवा न की।

नतीजा यह हुआ कि फ्रेंच लोग जब इस नगर में दाख़िल हुए, तब उनको खाने और सोने को कुछ भी नहीं मिला। सिर्फ़ उत्तर-मेरु की शीतल वायु, बरफ़ की वर्षा और दूर से आती हुई रूसी सेना के दर्शन उनको मिले। पचीस हज़ार सैनिकों के साथ नेपोलियन रूस से वापस आया। बिना युद्ध के ही उसके चार लाख सैनिक मारे गए!

जब युद्ध समाप्त हो गया, तब बादशाह एलेक्ज़ेंडर ने अपने शहर और गाँवों के सिपाहियों को उनके ज़बरदस्त त्याग और कष्ट के लिये इनाम में चाँद दिए। भगवान् की कृपा से देश की रक्षा हुई है, यह बताने के लिये इन चाँदों पर नीचे-लिखे शब्द खोदे गए थे—

"मेरी मार्फ़त या मेरे द्वारा नहीं, वरन् यह जीत तुम्हारे नाम पर है।"

---

(११०)

अमेरिका के एक सिपाही का नियम-पालन

एक बार अमेरिका में फ़ौज को क़वायद हो रही थी। उसी समय एक सिपाही के शरीर पर एक छोटा-सा ज़हरीला कीड़ा चढ़ने लगा। सिपाही उस वक्त क़वायद के हुक्म के माफ़िक दोनो हाथों में इधर-उधर बदूक़ फिरा रहा था। कीड़ा गाल पर होकर कान में घुसने लगा, लेकिन फिर भी सिपाही ने क़वायद की क़तार से निकलकर, बंदूक़ नीचे रखकर कीड़े को हटा देने का विचार नहीं किया। नतीजा यह हुआ कि कीड़ा कान में घुस गया, और उसने ऐसे ज़ोर का डंक मारा कि थोड़ी देर में सिपाही की मृत्यु हो गई!

अविचल भाव से नियम पालन करने का यह कितना अच्छा उदाहरण है। इस उदाहरण का अमेरिका के सारे सैनिकों पर बड़ा असर हुआ। खाली असर होकर ही नहीं रह गया, बल्कि उन्होंने एक फ़ंड क़ायम करके इस दृढ़-प्रतिज्ञ सिपाही का स्मारक बनवाया।

(१११)

पारस-मणि से भी क़ीमती पदार्थ

एक ब्राह्मण को धनवान् होने की बड़ी लालसा थी। धन की लालसा में यह साधु-संग भी करता और व्यापार भी, पर किसी से इसकी मरजी के माफ़िक़ अटूट धन प्राप्त नहीं हुआ।

एक दिन एक साधु ने इसकी सेवा से प्रसन्न होकर कहा—"वृंदावन में सनातन गोस्वामीजी के पास पारस-मणि है। उसका स्पर्श होते ही चाहे जो धातु हो, सोना हो जाता है।"

यह सुनकर लोभी ब्राह्मण गोस्वामीजी के पास गया, और प्रार्थना की—"भगवन्, यदि आप मुझे अपने पास की पारस-मणि दे दें, तो मैं देश में सबसे बड़ा सेठ बन जाऊँ।"

गोस्वामीजी बोले—"इस राख के ढेर में पड़ा है, ले जा। मेरे तो वह किसी काम का नहीं।"

ब्राह्मण ने आश्चर्य से पूछा—"क्या आपके पास इससे भी बढ़कर कोई क़ीमती पदार्थ है, जिसकी वजह से आपने पारस-मणि को ऐसी लापरवाही से डाल रक्खा है ?"

गोस्वामीजी ने कहा—"हाँ, मेरे पास एक ऐसी मणि है, जिसके सामने संसार के सारे पदार्थ असार हैं।"

अब तो ब्राह्मण के लोभ का ठिकाना नहीं रहा। उसने गोस्वामीजी से बहुत आग्रह किया कि वह क़ीमती पदार्थ मुझे दे दिया जाय।

गोस्वामीजी ने धीरे से उसके कान में "हरि-नाम" का मंत्र कह दिया, और साथ ही धर्म के लिये एक उपदेश भी दिया।

ब्राह्मण हरि-नाम पाकर और गोस्वामीजी का उपदेश सुनकर बहुत ख़ुश हुआ, और हरि-नाम लेता हुआ घर गया। घर जाकर पारस-मणि को वह बिलकुल भूल गया। इतना ही नहीं, जितना धन इसने कंजूसपने से इकट्ठा किया था, वह सब दान में दे डाला।

---

(११२)

राजा राममोहन राय की रामायण के पाठ में आसक्ति

उठती हुई जवानी में एक दिन राजा राममोहन राय एक भंडार में एकांत बैठकर संस्कृत वाल्मीकि - रामायण का अध्ययन कर रहे थे। पहले कभी आपने इस ग्रंथ का पाठ नहीं किया था, इसलिये विशेष आग्रह से पाठ शुरू किया गया।

धीरे-धीरे दोपहर पर दो बज गया, परंतु पाठ समाप्त नहीं हुआ। घर के लोगों को आपने सख्त हिदायत कर दी थी कि मेरे पाठ में ज़रा भी विघ्न न डाला जाय। भोजन

का समय बीत गया ; पर गंभीर स्वभाव के राममोहन राय के इस अनुष्ठान में विघ्न डालने का साहस कोई नहीं कर सका।

धीरे-धीरे सबने भोजन कर लिया, पर राममोहन राय अभी अध्ययन ही में लगे हुए हैं। तीसरा पहर भी आया, और बीत गया। पुत्र अभी भूखा है। जब तक पुत्र भोजन न कर ले, तब तक माता (फूल ठकुरानी) कैसे भोजन कर सकती हैं। इसी समय राममोहन राय के एक विशेष श्रद्धा-भाजन गृहस्थ ने साहस करके भंडार का दरवाजा खोला। राममोहन राय समझ गए। उन्होंने थोड़ी देर ठहरने के लिये उँगली से इशारा किया। थोड़ी देर में पाठ पूरा हो गया। पाठ पूरा करके आप भोजन करने को उठे।

अध्ययन इसी का नाम है। कहा जाता है, राममोहन राय ने बहुत ही एकाग्रता-पूर्वक सप्तकांड रामायण का पाठ किया था। सच है, अध्ययन के लिये एकांत ही स्थान चाहिए।

---

(११२)

सत्यवादी का सन्मान

जेनोक्रेटिस ग्रीस के एक अच्छे पंडित थे। उनको एक

मुक़द्दमे में गवाही देने के लिये अदालत जाना पड़ा। वहाँ आप नियमानुसार मजिस्ट्रेट की कुरसी के सामने खड़े होकर सत्य कहने की प्रतिज्ञा करने लगे। मजिस्ट्रेट ने कहा—"आप-जैसों के लिये प्रतिज्ञा करने की जरूरत नहीं। आपकी सारी बातें प्रतिज्ञा-पूर्वक ही कही गई होती हैं।"

इटली के कवि पेट्राक के संबंध में भी ऐसा ही था। इन्हें भी कभी बाइबिल हाथ में लेकर गवाही नहीं देनी पड़ती थी। न्यायाधीश इनका सम्मान करने के लिये खड़े होते और सौगंद दिलाए बिना ही इनकी गवाही लेते थे।

चरित्र-गुण के कारण ही इनको इतना सम्मान मिला था। सत्यवादी का कहाँ आदर नहीं होता? उसकी तो सब जगह पूजा होती है।

---

(११४)

केशवजी भट्ट और चैतन्यदेव

केशवजी भट्ट काश्मीरी ब्राह्मण और संस्कृत-भाषा के बहुत बड़े विद्वान् थे। अपनी विद्या का इन्हें बहुत गर्व था। गर्व होने के कारण वह जहाँ जाते, वहाँ शास्त्रार्थ करते और अपने को श्रेष्ठ साबित करते थे। इसी विचार से आप दिग्विजय करने के लिये काश्मीर से चलकर नदिया और शांतिपुर

जा पहुँचे। नदिया उस समय न्याय-शास्त्र का प्रसिद्ध और अभेद्य क़िला था।

नदिया के पंडितों ने जब भट्टजी का आगमन सुना, तो कानों हाथ देने लगे। एक दिन आप सैकड़ों शिष्यों को लेकर बैठे थे, इतने ही में वहाँ चैतन्यदेव जा पहुँचे। चैतन्यदेव की उम्र उस समय केवल सात वर्ष की थी, पर मुख-मुद्रा उनकी बहुत तेजस्वी और सुंदर थी।

भट्टजी का ध्यान उनकी तरफ़ गया। चैतन्यदेव बोले—"महाराज, आप बहुत बड़े पंडित हैं। मुझे कुछ सुनाइए।"

भट्टजी ने कहा—"तू अभी बालक है। पढ़ा-लिखा कुछ नहीं है। तू मेरी बातों को क्या समझेगा ?'

चैतन्यदेव ने हँसकर कहा—"और कुछ नहीं, तो गंगाजी की स्तुति के श्लोक ही सुनाइए। उन्हें सुनकर मैं प्रसन्न होऊँगा।"

भट्टजी चैतन्य बालक की भोली बातों से बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होंने अपने रचे हुए गंगाजी की स्तुति के श्लोक सुनाए।

चैतन्य ने कहा—"अब इन श्लोकों के गुण-दोष कहकर सुनाइए।"

भट्टजी ने कहा—"मेरी कविता दोष-रहित होती है।"

चैतन्यदेव हँसकर बोले—"अगर आप मुझे आज्ञा दें, तो मैं ही इनके गुण-दोष बता दूँ ?"

भट्टजी ने अपनी सम्मति दे दी। तब चैतन्यदेव ने एक-

एक करके पिंगल के अनेक दोष उनकी रचना में बताए। सुनकर पंडितजी घबरा गए; और विचारने लगे कि इतनी छोटी उम्र में ऐसा पांडित्य! यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। पर उस समय भट्टजी कुछ नहीं बोले।

चैतन्यदेव अपने घर चले गए। इधर केशवदेव मन-ही-मन बहुत शर्माने लगे। "संस्कृत-विद्या का मेरा अभिमान आज धूल में मिल गया।" यही विचार करते-करते रात को सो गए।

रात को स्वप्न में उनको चैतन्यदेव का महत्त्व मालूम हुआ। दूसरे रोज़ वह चैतन्यदेव के घर गए, और उनके पाँवों पड़कर कहने लगे—"आप सचमुच ज्ञान की मूर्ति हैं।" बस, उसी रोज़ से चैतन्यदेव पर उनकी श्रद्धा हो गई।

इसके बाद केशवजी जब बंगाल से बिदा होने लगे, तब चैतन्यदेव के पास उपदेश लेने गए। चैतन्यदेव ने कहा—"सुनो पंडितजी! केवल दो बातें ध्यान में रखना—पहली तो यह कि भगवान् की भक्ति करो। इससे तुम्हारा जन्म सफल हो जायगा, और तुममें सारे सद्गुण अपने आप प्रकट हो जायँगे। दूसरी बात यह कि अब किसी के साथ शास्त्रार्थ मत करना। इससे अहंकार और पक्षपात बढ़ता है। अपने पक्ष को मज़बूत करने और सत्य दर्शाने के लिये वाजिब और ग़ैरवाजिब दलीलों से भी काम लेना पड़ता

है। अहंकार इसी पाप की जड़ है। इससे जब बचोगे, तभी तुम्हारा असली कल्याण होगा।"

केशवजी नम्रता से बोले—"आज से मैं ऐसा ही करूँगा।" इसके बाद यह काश्मीर चले गए, और शास्त्रार्थ करना छोड़ दिया।

---

(११५)

युवकों के लिये उपदेश

जापान में नोगी नाम का सेनापति बहुत प्रसिद्ध स्वदेश-भक्त हो गया है। उसने नौजवानों के लिये सात नियम बनाए थे। उनमें से मुख्य पाँच नियम नीचे लिखे जाते हैं—

(१) बहुत बोलना अर्थात् बहुत वाचालपना हृदय के बहुत खाली होने की निशानी है; और इधर-उधर दौड़ती हुई दृष्टि मन के ठिकाने न होने की निशानी है।

(२) फटे कपड़े सीकर और मैले कपड़े धोकर पहनने में ज़रा भी शर्म मत करो। और, फ़ैशन में बिलकुल न फँसकर अपने जूते और कपड़े तंग रखने के बदले ज़रा ढीले रक्खो।

(३) मौसम के कारण मालूम होनेवाली सरदी या गरमी अगर तुम न सह सको, तो निश्चय समझो कि यह ख़ानदानी होने की निशानी नहीं, वरन् मुर्दा होने की

निशानी है, और उसका सादा इलाज करने की मामूली अक़्ल भी तुम नहीं रखते। असल में तुम्हारे सामान्य कर्तव्य का पालन करने में सरदी-गरमी से कोई भी अटकाव नहीं पड़ना चाहिए।

(४) तुम दिनोंदिन ऐसे बनते जाओ, जिससे निष्कामता के साथ अपने देश को भी कुछ लाभ पहुँचा सको। जो ऐसे बनने की इच्छा नहीं करते, उनके लिये जीने से मर जाना ही ज्यादा अच्छा है।

(५) अगर तुम किसी को सलाम करो, तो उसके सामने सभ्यता-पूर्वक देखो।

---

(११६)

महात्मा गांधी की वीरोचित क्षमा

दक्षिण-आफ्रिका में जिस समय सत्याग्रह की प्रथम लड़ाई चली, उस समय कुछ ग़लतफ़हमी पैदा हो गई थी, जिसके कारण कितने ही पठानों ने महात्माजी पर महाघातकी हमला किया था। महात्माजी मृत्यु-शय्या पर पड़ गए थे। उस समय वहाँ रेवरंड जे० जे० डोक नाम के एक अच्छे पादरी थे। उन्होंने महात्माजी को अपने घर में रखकर उनकी सेवा-शुश्रूषा करनी शुरू की। उसी घर पर पुलिस महात्माजी के बयान लेने आई। महात्माजी के कोमल

हृदय से उस समय दया के अमृत-झरने वह निकले। उन्होंने पुलिस को बताया—"मैं अपने देश-बंधुओं के ख़िलाफ़ मामला नहीं चलाना चाहता।" यह कहकर आपने बयान देने से इनकार कर दिया। पुलिस निराश होकर चली गई।

महात्मा ईसा की एक आज्ञा है—"Loue thy enemy as you love your self." अर्थात् "जितना तुम ख़ुद को चाहते हो, उतना ही वैरी को भी चाहो।" इस आज्ञा का महात्माजी ने अक्षरशः पालन किया। इस घटना को देखकर उस घर के ईसाइयों को कितना अधिक आनंद हुआ होगा!

महात्माजी इस घटना के बारे में कहते हैं—"अपने देश-भाई के हाथ की मार खाना जिसके भाग्य में लिखा हो, वह सच्चा पुण्यशाली है। मेरे उस भाई को मालूम हुआ कि मैं बुरा काम कर रहा हूँ, इसी से उसने अपने विचार के अनुसार मुझे दंड दिया। इसमें मैं उसे दोष कैसे दे सकता हूँ?"

धन्य है ऐसे स्वदेश-प्रेम को, और धन्य है ऐसी वीरोचित क्षमा-वृत्ति को! महात्मा गांधी को पाकर आज भारतवर्ष का मस्तक संसार के सामने ऊँचा हो रहा है।

---

(११७)

आत्मसम्मान की रक्षा

राजा राममोहन राय के समय में एक भारतवासी के लिये

कलक्टर या जिले के न्यायाधीश का सरिश्तेदार बनना बड़ा सम्मान था। इस पद पर एकदम पहुँचना कठिन काम था; इसलिये राममोहन राय को साधारण कारकुन की नौकरी मंज़ूर करनी पड़ी थी। उस समय कारकुनों के साथ कंपनी-सरकार के सिविलियन अफ़सरों का बर्ताव बहुत ख़राब था। देशी कारकुनों ने भी उन्हें ख़ुशामद करके और असत्य प्रेम का परिचय देकर बिगाड़ दिया था। अफ़सरों में भी उद्धतपन, जंगलीपन और देशी लोगों का अपमान करना आदि दुर्गुण दिखाई देते थे। ऐसी हालत में राममोहन राय-जैसे ख़ानदानी मनुष्य का अपने लिये चिंता करना स्वाभाविक था।

जॉन डिग्बी नाम के एक सिविलियन के पास राममोहन राय ने नौकरी के लिये अर्ज़ी दी। साहब ने उसे मंज़ूर कर लिया। तब राममोहन राय ने साहब के हाथ में एक इक़रारनामा सही करने को रक्खा। उसमें लिखा था—"जब-जब राममोहन राय साहब के पास काम के लिये आएगा, तब-तब उसे कुरसी देनी पड़ेगी, और साधारण कारकुनों के लिये जैसे उद्धतपने के हुक्म जारी किए जाते हैं, वैसे नहीं कर सकेंगे।" साहब ने इस बारे में मुँह से सम्मति दे दी, पर इतने से राममोहन राय को संतोष नहीं हुआ, और उन्होंने लिखित इक़रार का ही साहब से आग्रह किया। अंत में डिग्बी साहब को वह शर्त मंज़ूर करके

इक़रारनामे पर सही करनी पड़ी, और तभी राममोहन राय ने नौकरी करना मंजूर किया।

इसके बाद राजा राममोहन राय ने अपने कामों से अफ़सरों को इतना ज्यादा प्रसन्न किया कि डिग्बी साहब पीछे से आपके इष्ट मित्र और प्रशंसक बन गए। इन दोनो का स्नेह जीवन-पर्यंत क़ायम रहा।

---

(११८)

प्रतिज्ञा न करने के बाबत टॉलस्टॉय का मत

सौगंद लेने से अपनी नीति बिगड़ती है या क्या ? इसके बारे में टॉलस्टॉय बताता है कि प्रभु ने आपको विवेक, बुद्धि इसीलिये दी है कि उससे आपके बर्ताव को व्यवस्थित रखने में सहायता मिले। अतएव इस बुद्धि को अलग रखकर आपको अपना वचन किसी को बेच नहीं देना चाहिए, जिससे आपको उस वचन के अनुसार अयोग्य बर्ताव करना पड़े। खयाल करो, किसी बादशाह, ज़ार, क़ैसर, राजा, रानी, मुखिया या सेनापति के वचन में रहने की तुमने शपथ ली है। अब अगर इनमें से कोई तुम्हें चाहे जैसा अपराध करने की आज्ञा दे, तो तुम क्या करोगे ? ऐसी हालत में क्या तुम्हें संकोच न होगा ? ज़रूर होगा। इसी तरह अगर तुम्हारा जुल्मी सत्ता-

धीश ऐसी शपथ के बल पर आज्ञा दे कि एक उत्तम और निर्दोष मनुष्य को मार डालो, तो तुमको प्रभु की आज्ञा भंग करनी पड़ेगी, या वचन भंग करने की जरूरत पड़ेगी। दोनो में से कोई भी एक पाप आपको जरूर करना पड़ेगा। ऐसी दशा में तुम क्या करोगे? बड़ी कठिनाई उपस्थित हो जायगी। इसलिये ऐसी कठिनाई का मौक़ा न आने देने के लिये पहले से ही उपाय करना लाज़िमी है, और वह उपाय यही है कि वचन-बद्ध नहीं होना चाहिए।

जर्मनी के सम्राट् दूसरे विलियम ने नए भर्ती किए हुए सैनिकों को क़सम दिलाई। क़सम दिलाने के बाद उसने उन लोगों से कहा—"तुम लोग मेरी आज्ञा का पालन करने की सौगंद खा चुके हो, यह बात अच्छी तरह ध्यान में रखना। अब अगर मैं तुमसे तुम्हारे पिता के ऊपर भी गोली चलाने को कहूँ, तो तुम लोग मेरी उस आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकोगे।"

युद्ध की आड़ में मनुष्य-वध का यह सरल धंधा ऐसी ही शपथ पर आधार रखता है। अपनी सदसद्-विवेक-बुद्धि इस तरह शासक के अधीन कर देने की प्रथा सब देशों में जारी है, और इसी से महा अधम युद्ध-व्यवहार जगत् में क़ायम है।

---

(११६)

बीड़ी पीने के संबंध में टॉलसटॉय का विचार

एक बार रूस का एक प्रसिद्ध नट टॉल्सटॉय के घर मिलने आया। उस समय टॉल्सटॉय के यहाँ कुटुंबी जनों के सिवा, स्नेही भी चाय पीने को इकट्ठे हुए थे। थोड़ी देर बाद उस नट ने बीड़ी सुलगाई। टॉलसटॉय फ़ौरन् पूछ उठे—"अरे, यह क्या करते हो?" नट लज्जित हुआ, पर अपने कार्य का बचाव करने के लिये बोला—"बीड़ी पीने से मन की क्रिया अच्छी चलती है, और विचार-शक्ति विशेष तीव्र बनती है।"

टॉल्सटॉय ने हँसकर कहा—"हालत, जसी तू कह रहा है, उससे उल्टी है, ऐसा मेरा ख़ुद का अनुभव है। असल में बीड़ी पीने के बाद मग़ज़ तप जाता है, और तप जाने से अनेक विचारों की खलभलाहट मन में होने लगती है। इससे तुलना-शक्ति पर पर्दा गिर जाता है, जिससे विचारों की यह खलभलाहट दिखाई नहीं देती, सिर्फ़ इतना ही मालूम होता है कि हमको बहुत-से विचार सूझ रहे हैं।"

बीड़ी पीनेवालों को टॉल्सटॉय की इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

---

(१२०)

टॉलस्टॉय और ब्रह्मचर्य की महिमा

महात्मा टॉलस्टॉय ने ब्रह्मचर्य और विषय-वासना के बारे में अपने एक मित्र से कहा—"मुझे जब अपनी जवानी के दिनों का वर्ताव याद आता है, तब मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आहार-विहार में अंकुश न रहने के कारण मनुष्य के हाथ से अनेक प्रकार के कुकर्म बन जाते हैं। जीभ की लोलुपता अत्यंत विपयासक्ति की जड़ है। एक बार मैं एक जवान किसान के साथ गाड़ी में बैठकर जा रहा था। यौवन की रेखा उस किसान के बदन पर नई ही दिखाई देने लगी थी। उसका विवाह नहीं हुआ था। मैंने उससे पूछा—'क्या तुमको स्त्री की जरूरत नहीं मालूम होती?' उसने कहा—'काउंट साहब! इस बात के विचार करने का ही समय मुझे कहाँ मिलता है!'"

---

(१२१)

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य और मास्को का प्रसिद्ध डॉक्टर

मास्को में एक प्रसिद्ध अँगरेज डॉक्टर रहता था। एक बार एक युवक उसके पास सलाह लेने गया। युवक का सब हाल सुनकर डॉक्टर बोला—'तू अब भरपूर जवानी में आ गया है, इसी से तेरे शरीर में सब विकारों की उत्पत्ति हो गई

है। अब तू जैसे बने, वैसे जल्दी विवाह कर या दूसरी कोई तदबीर कर।"

युवक ने कहा—"क्या दूसरी तदबीर अनीति में दाख़िल नहीं ?"

डॉक्टर बोला—"वैद्यक-शास्त्र का मत मैंने तुझे बताया है। नैतिकता के विषय में चर्चा करनी हो, तो धर्मगुरु के पास जा।"

यह कहकर डॉक्टर थोड़ी देर तक चुप रहा। फिर बोला—"तेरे शरीर की नीरोगता के लिये जिस बात की ज़रूरत थी, वह मैंने तुझे बताई है। लेकिन फिर भी तेरी प्रकृति सुधारने का दूसरा भी एक उपाय है, और वह है सच्चे अंतःकरण से नैष्ठिक ब्रह्मचर्य पालन करना। इसके लिये तुझे विषय-वासना को बिलकुल मार डालना चाहिए। युवतियों के झुंड में कभी नहीं जाना चाहिए। इतना ही नहीं, पर-स्त्रियों के चित्र देखना भी तेरे लिये जोखिम का काम है। इसी तरह बदमाश और गुंडे जवानों से भी तुझे दूर रहना चाहिए। मैं धार्मिक मनुष्य नहीं हूँ, पर महात्मा ईसा का दिया हुआ उपदेश कितना योग्य और शास्त्रानुकूल है, यह मैं अच्छी तरह समझता हूँ। ईसा कहते हैं—'किसी भी स्त्री की तरफ़ जो विषय-दृष्टि से देखता है, वह उसके साथ मानसिक व्यभिचार करता है।' उनका कहा हुआ यह वचन वैद्यक-शास्त्र की कसौटी

पर भी खरा उतरता है, और हम डॉक्टर लोगों का भी यही अनुभव है।"

---

(१२२)

लेखकों के लिये टॉलसटॉय की शिक्षा

टॉल्सटॉय के समय में रूस में साहित्य की दुर्दशा हो रही थी। मामूली लोगों को उपयोगी हो सके, ऐसा उत्तम साहित्य रूसी-भाषा में नहीं था। इस कमी को पूरा करनेवाली एक संस्था काउंट टॉलसटॉय के प्रोत्साहन से वहाँ स्थापित हुई, जिसका उद्देश्य सादी और सरल भाषा में उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशन करना था।

अब लेखकों का उद्देश्य कैसा होना चाहिए, इसके संबंध में टॉलसटॉय कहते हैं—"लेखकों को केवल सादा भोजन के बदले में सामान्य जन-समाज के लिये उत्तम पुस्तकें लिखनी चाहिए। लेखक जिस अन्न का आहार करता है, जो वस्त्र पहनता है, और जिस घर में रहता है, वे सब, लोगों की मेहनत से उत्पन्न किए हुए होते हैं, और लेखक उन सब चीज़ों का बिना परिश्रम किए उपभोग करता है। ऐसी हालत में उसे उत्तम पुस्तकों द्वारा यह ऋण चुकाना चाहिए। सिर्फ़ ऐशोआराम और श्रीमान् लोगों के लिये ही अगर लेखक लिखा करे, और सामान्य जनता का विचार न

करे, तो सामान्य जनता भी उसका पोषण क्यों करेगी ? बल्कि ऐसे लेखक तो समाज के लिये निरर्थक और नुक़सान करनेवाले होते हैं।"

---

(१२३)

सुख-शांति भोगने का उत्तम उपाय

मेनीडिमस नाम के एक विद्वान् से किसी ने पूछा—"हमारी जिस समय कुछ इच्छा हो, अगर वह उसी समय पूर्ण हो जाय, तो इससे ज्यादा सुख और क्या हो सकता है ?"

विद्वान् ने उत्तर दिया—"हमको भगवान् ने जो कुछ दिया हो, उससे ज्यादा किसी की इच्छा न करना ही ज्यादा सुख प्राप्त करना है। क्या इसमें ज्यादा सुख नहीं है ?"

प्रश्नकर्त्ता-जैसे स्वभाववाले मनुष्यों को चाहे जितनी संपत्ति मिल जाय, तो भी वे वासना के ग़ुलाम होते हैं, और इसीसे सदा असंतोषी और दुखी रहते हैं। इसके विपरीत, उत्तर देनेवाले विद्वान् जैसे मनुष्य जैसी हालत होती है, उसी में संतोष मानते हैं, और वे ही जगत् में सुख-शांति भोगते हैं।

---

(१२४)

ग़रीब किसान की अतिथि-सेवा

लगभग तीन सौ वर्ष पहले रूस में आइवान नाम का एक

राजा राज्य करता था। रूस के राजा को ज़ार कहते हैं। राजा आइडान प्रजा-वत्सल राजा था। मेरी प्रजा सुख में है या दुख में, यह जानने के लिये वह समय-समय पर साधारण मनुष्यों का वेश धारण करके राज्य में घूमता था। कोई उसे इस वेश में पहचान नहीं सकता था।

इसी तरह एक दिन वह मास्को-प्रांत में घूमने निकला। घूमते-घूमते एक छोटे-से गाँव में पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने ज़्यादा थक जाने का ढोंग करके कई लोगों के घरों पर जाना शुरू किया कि मुझे रात-भर विश्राम कर लेने दो। पर किसी ने उसकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। उसने गंदे और फटे वस्त्र तो पहन ही रक्खे थे। ऐसे वस्त्रों को देखकर सब लोग अपने-अपने दरवाज़ों से उसे हटाने लगे।

अपनी प्रजा का ऐसा निष्ठुर बर्ताव देखकर राजा के मन में बहुत ही संताप हुआ। ज्यों ही वह संताप करता हुआ राजमहल की तरफ़ जाने लगा, त्यों ही एक छोटी-सी झोपड़ी कुछ दूर पर उसे दिखाई दी। इस झोपड़ी के पास जाकर राजा ने दरवाज़ा खटखटाया। किसान ने दरवाज़ा खोलकर पूछा—"कौन है?" राजा ने कहा—"मैं थका-माँदा मुसाफ़िर हूँ। क्या आप रात-भर मुझे यहाँ विश्राम करने देंगे?" किसान ने नम्रता के साथ कहा—"हाँ भाई, आओ, बहुत ख़ुशी से आओ। मेरे घर में जो थोड़ा-सा भोजन रक्खा है, उसे आराम से खाओ। आप ज़रा कुसमय में

आए हैं। आज मेरी स्त्री बीमार है, और मुझसे स्वागत का काम अच्छी तरह नहीं बन पड़ता है। खैर, मगर आप ठंड में बाहर क्यों खड़े हैं ? अंदर आइए।" यह कहकर वह किसान राजा को एक छोटी-सी कोठरी में ले गया, जो छोटे-छोटे बालकों से भरी थी।

एक झूले में दो बालक सो रहे थे। पास ही एक तीन वर्ष की बच्ची कंबल पर आराम से सो रही थी। किसान ने राजा से कहा—"तुम यहीं बैठो। मैं तुम्हारे वास्ते खाने-पीने का इतज़ाम करता हूँ।"

इतना कहकर वह चला गया। थोड़ी देर में वापस आया, और राजा के सामने रोटी और शराब रखकर बोला—"मेरे बच्चों के साथ आप इसे खाइए, मैं अपनी स्त्री को सँभालता हूँ।"

यह कहकर किसान अपनी स्त्री को सँभालने के लिये चला गया। थोड़ी देर में एक छोटे बच्चे को गोद में लेकर आया, और राजा से कहने लगा—"कल इस बच्चे का नामकरण होगा।" राजा ने बड़े प्रेम के साथ उस बालक को गोद में लिया, और आशीर्वाद दिया कि यह बालक बहुत भाग्यशाली होगा। अतिथि की भविष्य-वाणी सुनकर किसान को प्रसन्नता हुई, और उसके मुख पर हास्य की रेखा दिखाई देने लगी।

रात बहुत हो गई थी। दरिद्र किसान ने घास का बिछौना बिछाकर राजा को सुलाया, और आप भी उस पर सो गया।

सवेरा होने पर राजा किसान से विदा माँगकर रवाना हुआ। और, जाते समय कह गया—"मैं जब नगर को पहुँचूँगा, तब वहाँ के एक धनवान् पुरुष से, जो मेरे मित्र हैं, तुम्हारी तारीफ़ करूँगा; क्योंकि आज तुमने मेरे साथ बहुत ही मुहब्बत का बर्ताव किया है। मैं उनसे तुम्हारे इस बालक के 'धर्मपिता' बनने के लिये भी आग्रह करूँगा। मुझे वचन दो कि मेरे आए बिना तुम इस बालक का नामकरण-संस्कार न करोगे। मेरे लिये तुम थोड़ा इंतज़ार करना। मैं तीन घंटे में लौटकर आता हूँ।" किसान ने ऐसा ही किया।

राजा चला गया। तीन घंटे बीत गए, लेकिन कोई नहीं आया। किसान बच्चे को लेकर देवालय में जाने की तैयारी करने लगा, इतने ही में उसने दूर से आते हुए घोड़ों की टाप की आवाज़ सुनी। उसने देखा, राजा के अंग-रक्षक सिपाही आ रहे हैं। देखते-ही-देखते वे लोग झोपड़ी के पास आ पहुँचे। राजा गाड़ी से नीचे उतरा, और किसान के पास जाकर बोला—"मैं अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने आया हूँ। बालक को मेरी गोद में दो, और मंदिर में चलो।"

किसान एकदम अचंभे में हो गया। मुख से एक शब्द भी न निकला। घबराकर राजा के मुँह की तरफ़ देखने लगा। राजा ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा—"क्या अपना

मालूम हो रहा है ? कल रात को तूने मेरे साथ भलमनसाहत का बर्ताव किया है, आज मैं उसका बदला चुकाने आया हूँ। तेरा यह बालक आज से मेरी देख-रेख में रहेगा।"

इतना कहकर राजा ने कुछ हँसकर पूछा—"क्यों, मेरी भविष्य-वाणी सच्ची निकली या नहीं ?"

सरल स्वभाववाला किसान अब सारा रहस्य समझ गया। उसकी आँखों में आँसू भर आए। उसने फ़ौरन् बालक को लाकर राजा के सामने रख दिया। राजा बालक को गोद में लेकर मंदिर की तरफ़ चला।

इसके बाद राजा ने अपनी प्रतिज्ञा को पूरे तौर पर पालन की। इस बालक को राजा अपने राजमहल में ले गया, और अपने ही बालक की तरह उसका पालन-पोषण किया। किसान के लिये झोपड़ी की जगह हवेली बनवा दी गई। उसमें किसान बड़े सुख से ज़िंदगी बिताने लगा।

ग़रीब किसान के सद्गुणों की कितनी अच्छी क़द्र की गई !

---

(१२५)

भक्त के भगवान्

तिरुप्पान नाम के एक बड़े भारी ईश्वर-भक्त हो गए हैं। इनका दूसरा नाम मुनिवाहन था। यह जाति के चांडाल थे।

दक्षिण-भारत के एक गाँव में, सन् १०० ई० में, एक चांडाल के घर में, इनका जन्म हुआ था। पहले आपने संगीत-विद्या में अच्छी निपुणता प्राप्त की। इसके बाद आप ईश्वर के पूरे भक्त बन गए।

ईश्वर के गुण-गान करना आपका मुख्य काम था। सड़कों पर, हाट-बाजार में, गली-कूचों में आप ईश्वर के भजन गाते फिरते थे।

एक दिन श्रीरंग में गान करते-करते आप रास्ते में मूर्च्छित होकर गिर पड़े। सुध-बुध न रही। इतने ही में श्रीरंगनाथजी का एक पुजारी ठाकुरजी की पूजा के लिये जल भरने को इधर निकला। रास्ते मे चंडाल को पड़ा देखकर उसके क्रोध का पार न रहा। किस तरह इसने मेरे रास्ते को रोक रक्खा है, और मुझे देखकर भी यह रास्ते से नहीं हटता, यह इसकी बड़ी भारी ढिठाई है। यह सोचकर और क्रोध में आकर पुजारी ने मुनिवाहन को इतना मारा कि उनकी मूर्च्छा जाती रही, वह उठकर खड़े हो गए। और, मार्ग हो जाने से पुजारी जल भर लाया। पर जल भरकर जब वह मंदिर में गया, तो देखता है कि मंदिर के द्वार अंदर से बंद हैं! यह देखकर पुजारी ने भगवान् से बहुत क्षमा माँगी कि हे भगवन्! मुझसे जाने-अजाने यदि कोई अपराध हो गया हो, तो उसे क्षमा करो। मंदिर से आज्ञा मिली कि जब तू मेरे

उस चांडाल भक्त को कंधे पर बिठाकर मेरे मंदिर की परिक्रमा करेगा, तभी मंदिर का द्वार खुलेगा।

यह आज्ञा सुनकर पुजारी बहुत लज्जित हुआ, और पश्चात्ताप करते हुए उसने भगवान् की आज्ञा का पालन किया, तभी द्वार खुले।

---

(१२६)

धनवान् और विद्वान्

एक मनुष्य ने एक पंडित से पूछा—"विद्वान् तो धनवानों से मिलने जाते हैं, पर धनवान् विद्वानों के घर क्यों नहीं आते ?"

पंडितजी ने उत्तर दिया—"विद्वानों को धन-जैसी जड़ वस्तु की जितनी इच्छा होती है, उतनी धनवानों को ज्ञान-जैसी महान् वस्तु की नहीं होती।"

---

(१२७)

जीवन-चरित्र कब लिखना चाहिए ?

पंडित शिवनाथ शास्त्री बंगाल के एक सुप्रसिद्ध धार्मिक, सुधारक, निपुण लेखक और प्रभावशाली वक्ता हो गए हैं। साधारण ब्राह्म समाज के आप संस्थापक और आचार्य थे। देश-सेवा में ही आपका जीवन व्यतीत हुआ था। ८१ वर्ष

की अवस्था में आपने ब्राह्म धर्म का प्रचार तथा पाश्चात्य समाज का अवलोकन कर उसके गुण ग्रहण करने के लिये योरप की यात्रा की। उस समय आपकी सच्चरित्रता और धार्मिक भाव से कई लोग आपकी तरफ आकर्षित हो गए थे। ऐसी हालत में आपकी पुत्री श्रीमती हेमलतादेवी को आपका जीवन-चरित्र लिखने की इच्छा हुई। उसने पिताजी को विलायत पत्र लिखकर अपना अभिप्राय बताया। इस पत्र का जो उत्तर शिवनाथ शास्त्री ने दिया, उससे थोड़ी-बहुत सेवा करके एकदम मशहूर होने की घबराहट रखनेवाले देश-सेवकों को नसीहत लेनी चाहिए। आपने लिखा—"पुत्री ! तूने अपने पत्र में लिखा कि मैं तुम्हारा जीवन-चरित्र लिखनेवाली हूँ। छिः ! छिः ! ऐसा काम कभी मत करना। तेरे पिता का जीवन-चरित्र लिखने का समय अभी नहीं आया, अभी वह बहुत दूर है। जब ईश्वर की सेवा में मेरी मूछें सफ़ेद हो जायँ, यह रसना जब प्रभु के गुण गान करती-करती बुढ़ापे में निस्तेज और असमर्थ हो जाय, ये नेत्र प्रभु पर विश्वास रखनेवाले मनुष्यों का मुख देखते-देखते जब निस्तेज और अंधे हो जायँ, और जब मैं तेरे कंधे पर हाथ रखकर ब्राह्म समाज में उपासना करने जाऊँ, तब तक अगर मैं ज़िंदा रहूँ, तो तू अपने पिता का मामूली हाल लिखना। तेरे जीवन ने जगदीश्वर की कृपा ने कैसा काम किया है, इसकी साक्षी देना। इस समय तो

मुझे, मेरा भी जीवन-चरित्र लिखा जायगा, यह विचार करते ही शर्म मालूम होती है।"

पितृवत्सल कन्या की इच्छा पूर्ण हुई। पंडित शिवनाथ शास्त्री ब्राह्म समाज की वेदी पर से सैकड़ों उपदेश और प्रवचन देकर तथा ब्रह्म का गुण गान करते-करते वृद्ध हो गए। वृद्धावस्था में आपकी मृत्यु हो गई। पिछली अवस्था में आपने खुद अपने जीवन के अनुभव 'आत्म-चरित्र' में लिखे। परंतु यह कार्य आपने तब किया, जब अपने निर्माण किए हुए कार्य को पूरा कर दिया ❀।

---

(१२८)

दूसरों की प्राण-रक्षा को अमूल्य समझना

इँगलैंड-देश में नार्थंबरलैंड के पास समुद्र में डूबे हुए अनेक पहाड़ हैं। इन पहाड़ों से टकराकर जहाज़ टूट न जायँ, इसलिये उन्हें चेतावनी देने के लिये एक रोशनी का कंडील बाँध दिया गया है। वहाँ बस्ती नहीं थी, केवल डारलिंग नाम का एक नौकर दीपक जलाने के लिये कुटुंब-सहित वहाँ रहता था। सन् १८८३ के सितंबर-मास में

❀ पं० शिवनाथ शास्त्री ने ब्राह्म समाज में जो उपदेश दिए थे, वे सब 'धर्मजीवन' पुस्तक के तीन भागों में, बँगला-भाषा में, प्रवासी-कार्यालय, कलकत्ता से, प्रकाशित हुए हैं। आपका 'आत्म-चरित्र' भी वहीं से प्रकाशित हुआ है।

समुद्र में भारी तूफ़ान आया, और लालटेन से आध मील दूर एक टेकरी से टकराकर एक जहाज़ टूट गया। सवेरे दूरबीन से डारलिंग ने देखा कि उस टूटे हुए जहाज़ का एक हिस्सा टेकरी पर पड़ा है, और बाक़ी हिस्सा चूर-चूर हो गया है। जो भाग बच गया था, उसमें दस-बारह मुसाफ़िर थे। डारलिंग की कन्या ने यह करुणा-जनक दृश्य देखकर पिता से पूछा—"पिताजी! क्या हम इन लोगों की रक्षा का कोई उपाय नहीं कर सकते? क्या हमको ऐसे ही बैठे रहना चाहिए? इतने मनुष्य सहायता के बिना मर जायँ, और हम बैठे-बैठे देखते रहें, यह तो उचित नहीं।"

पिता ने कहा—"हमारी छोटी किश्ती लेकर इन लोगों को बचाने जाना साक्षात् यमराज से मिलने के बराबर है। टेकरी चारो तरफ़ से जल में डूबी हुई है, और हवा जोरदार है।"

पिता की बात से पुत्री को संतोष नहीं हुआ। उसने हठ पकड़ लिया कि किसी तरह भी इन लोगों को बचाया जाय। अंत में पुत्री के बहुत आग्रह से दोनो ने अपनी छोटी किश्ती तूफ़ानी समुद्र में डाली। कन्या की उम्र उस समय २२ वर्ष की थी। पर उसका शरीर कुछ ज़्यादा बलवान् नहीं था, और अब तक उसे शांत समुद्र में ही किश्ती चलाने का अभ्यास था। ऐसे तूफ़ान में वह उसने कभी किश्ती में नहीं बैठी थी। पर आज तो ईश्वर का नाम लेकर

करुणामयी ग्रेस (उसका नाम ग्रेस था) अपने पिता के साथ नाव पर बैठकर तूफ़ान के सामने गई। थोड़ी देर में साक्षात् मृत्यु से टक्कर लेकर वह टेकरी के पास पहुँच गई, और विपद्ग्रस्त मुसाफ़िरों को बचाया।

यह समाचार बचे हुए लोगों ने कृतज्ञता के साथ चारो तरफ़ फैलाया। नतीजा यह हुआ कि योरप के अनेक देशों से प्रशंसा-पत्र, चाँदी और रुपयों की थैलियाँ ग्रेस और डारलिंग के पास इनाम के तौर पर आने लगीं। इस तरह योरप ने खब उन दोनो का सम्मान किया। धन्य है उस ग्रेस को, जिसके दिल में विपद्ग्रस्त लोगों को बचाने के लिये दया उपजी, और वृद्ध पिता को लेकर अकाल मृत्यु का सामना करते हुए उसने तूफ़ानी समुद्र में अपनी छोटी-सी नैया डालने का साहस किया! हमारी बहू बेटियों को इस साहस के काम से काफ़ी तौर पर शिक्षा लेनी चाहिए।

---

(१२६)

भक्त तुकारामजी की सहनशीलता

संसार में ऐसे अनेक महापुरुष हो गए हैं, जिनका कर्कशा स्त्रियों से पाला पड़ा था। ऐसे बहुत-से दृष्टांत लिखे हुए भी मिलते हैं। महाराष्ट्र-प्रांत के सुप्रसिद्ध साधु और कवि

श्रीतुकाराम के जीवन में भी ऐसी ही घटना घटी थी। इनकी स्त्री बहुत ही संकुचित मन की और कलहकारिणी थी। तुका-रामजी पर-हित में और प्रभु-सेवा में ही जीवन बिताते थे, और घर के धंधे में ध्यान न देते थे। यह बात स्त्री को पसंद न थी।

एक दिन तुकारामजी थोड़े गन्ने लेकर घर आ रहे थे। रास्ते में आपको कई गरीब मनुष्य मिले। आपने दया-वश होकर एक-एक गन्ना गरीबों को बाँट दिया। और जब घर आए, तब एक ही गन्ना आपके पास रह गया। आपकी स्त्री के कानों में यह समाचार पहले से ही पहुँच चुका था। घर पहुँचकर पति ने केवल एक ही गन्ना पत्नी को दिया। यह देखकर पत्नी का क्रोध उमड़ गया। उसने क्रोध में आकर वह गन्ना तुका-रामजी की पीठ पर इतने जोर से मारा कि उसके दो टुकड़े हो गए। तुकारामजी के कैसी चोट लगी होगी, इसका अनुमान सहज ही में किया जा सकता है। परंतु इस पवित्र संत ने हँसकर कहा—"सहधर्मिणी का सच्चा धर्म यही है। मैंने तुझे एक गन्ना खाने को दिया था। उसे तू अकेली कैसे खा सकती थी? इसी से तूने स्वामी को देने के लिये इसके दो टुकड़े किए!"

---

(१३०)

ग़रीबों की सेवा और स्वामी विवेकानंदजी के विचार

रामकृष्ण-मिशन से जब पहलेपहल संकट-निवारण का काम मुर्शिदाबाद-जिले में शुरू किया गया, तब स्वामी विवेकानंदजी ने स्वामी श्रद्धानंदजी को एक पत्र में लिखा—"सिर्फ़ कुछ ग़रीबों को चावल दे देने से काम नहीं चलेगा। चिरकाल से हमारे यहाँ दान दिया जाता है, तो भी सहायता माँगनेवालों की भारत में कमी नहीं। आप सहायता के साथ कुछ शिक्षा भी देते हैं या नहीं ? जब तक लोगों का कमाने की शक्ति आने के पहले विवाह होता रहेगा, तब तक इन भुखमरों के नंगे बच्चों की शिक्षा नहीं होगी। इसके सिवा ऐसी सहायता बहुत-से लुच्चे-लफंगे भी अपने को ग़रीब बताकर ले जाते हैं, इसलिये खास तौर पर सावधानी रखकर सहायता देनी चाहिए। अब आप समझे होंगे कि विद्या-दान ही हमारा मुख्य कार्य है।"

बात सच्ची है। अन्न-दान से तो सिर्फ़ एक ही दिन का संकट दूर होता है, पर विद्या-दान से ज़िंदगी-भर का दुःख टलता है।

(१३१)

धर्म-प्रचार के लिये ज्ञान की आवश्यकता

स्वामी विवेकानंद के पहले शिष्य संन्यासी सदानंद थे। यह अपने नामानुसार बड़े आनंदी स्वभाव के थे। सन् १८६७ में स्वामी विवेकानंदजी, सदानंदजी और दो-एक शिष्य रेलवे में मुसाफिरी कर रहे थे। स्वामीजी को अमेरिका के प्रवास से लौटे एकाध वर्ष हो गया था, और सारे भरतखंड में गुरुदेव के उपदेशों का प्रचार करने के लिये आप तन-मन से प्रयत्न कर रहे थे। आपको विश्वास था कि प्रचार-कार्य करने के लिये गहरी विद्वत्तावाले मनुष्यों की जरूरत है। अपने शिष्यों और गुरुभाइयों में आपको अपने इच्छानुसार विद्वत्ता दिखाई नहीं देती थी। इस बात से आपको बड़ा परिताप होता था, और इसी से आप कभी-कभी शिष्यों से रुष्ट हो जाते थे। ऐसी ही घटना उस दिन गाड़ी में हो गई। गुप्त महाराज को लक्ष्य करके तिरस्कार-सूचक भाषा में स्वामीजी बोले—"तू तो अब पढ़ने-लिखने का कुछ भी काम नहीं करता। तुझसे अब कुलीगीरी के सिवा और क्या हो सकता है ?"

गुप्त महाराज ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज ! आप ही ने मुझे पढ़ने-लिखने के लिये मना कर रक्खा है न ?"

स्वामीजी बोले—"मैंने तुझसे इसके बदले में साधन-भजन करने के लिये भी कहा था, इसमें तू कितना आगे बढ़ा ?"

शिष्य को इस बात से बहुत पश्चात्ताप हुआ।

---

(१३२)

पुराण और ब्राह्मण-ग्रंथ

शरीरांत होने के थोड़े महीने पहले स्वामी विवेकानंदजी ने अपने एक शिष्य से पूछा—"क्या पढ़ते हो?"

शिष्य ने उत्तर दिया—"विष्णुपुराण।"

यह सुनकर स्वामीजी ने उपदेश दिया—"वेद के ब्राह्मण-ग्रंथ पढ़े बिना पुराणों का रहस्य समझ में नहीं आ सकता। क्योंकि पुराण का मूल ब्राह्मण-ग्रंथ में है। पुराण की बहुत-सी कथाएँ ब्राह्मण-ग्रंथ से ली गई हैं।"

इसके बाद लाइब्रेरी से जीवानंद विद्यासागर-संपादित 'गोपथ ब्राह्मण' निकालकर उसमें से कुछ पृष्ठ शिष्यों को पढ़ाए।

---

(१३३)

सच्चा प्रभु-प्रेम

किसी स्त्री का एक पुरुष के साथ सच्चा प्रेम हो गया था। उसके सिवा वह संसार में किसी को नहीं चाहती थी। एक बार उसे अपने प्रियतम का वियोग सहना पड़ा, जिससे उसने खाना, पानी और सोना छोड़ दिया। धीरे-धीरे उसका सुंदर

शरीर सूखने लगा। आख़िरकार एक दिन उसे प्रियतम का समाचार मिला। समाचार मिलते ही वह हर्ष के मारे बावली-सी होकर उससे मिलने चल पड़ी। रास्ते में अकबर बादशाह का पड़ाव था। बादशाह अपने डेरे के पास जाजम बिछाकर नमाज़ पढ़ रहे थे। प्रेम की दीवानी उस स्त्री को बादशाह का कुछ भी भान नहीं रहा, और वह नमाज़ की जाजम पर पाँव रखती हुई निकल गई। यह देखकर अकबर को क्रोध तो बहुत आया, लेकिन नमाज़ पढ़ रहे थे, इसलिये क्रोध रोकना ही पड़ा।

स्त्री अपने प्रियतम के पास पहुँची, और उससे मिलकर वापस लौटी। उस वक़्त बादशाह नमाज़ पढ़ चुके थे। स्त्री को देखकर वह बोले—"क्यों री पापिनी! तुझे यह भी भान नहीं रहा कि यह जाजम है?"

प्रेम-रस में डूबी हुई उस स्त्री ने निर्भयता के साथ हँसते-हँसते उत्तर दिया—

"नर-राची सूझी नहीं; तुम कस लख्यो सुजान!
पढ़ क़ुरान बौरे भए, नहिं राचे रहमान।"

अर्थात् हे बादशाह सलामत! मैं तो मनुष्य के प्रेम में पगली हो गई थी, जिससे आपको मैंने नहीं देखा, और न आपकी जाजम नज़र आई, परंतु आपने मुझको किस तरह देखा? मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि आप क़ुरान पढ़-

पढ़कर थक गए, पर आपके हृदय में स्वामी के प्रति सच्चा प्रेम अभी तक नहीं उपजा।

इस उत्तर से बादशाह बहुत लज्जित हुए।

---

(१३४)

जीती हुई प्रजा को निकम्मी बनाना

लिडिया-वासियों पर ईरानियों के विजय प्राप्त कर लेने के बाद उन्होंने ईरान के ख़िलाफ़ बलवा किया। उस समय ईरान के बादशाह साईरस ने आज्ञा दी—"इस बलवे को शांत करने के लिये मैं लिडिया-वासी सब लोगों की हत्या करूँगा, या उनको पकड़कर ग़ुलामों के तौर पर बेचूँगा।"

इस आज्ञा को सुनकर लिडिया के क़ैदी राजा क्रीसस ने साईरस को सलाह दी—"इस समय तो आप इनको क्षमा करें। इनकी हत्या भी न करें, और न इनको ग़ुलाम के तौर पर बेचें। बल्कि यह करें कि इनके हथियार बिलकुल छीन लें, और सुख-शांति में रखकर इनको उत्तम वस्त्र पहनाने की व्यवस्था कर दें। शराब पीने, नाच-गान में मशग़ूल रहने और नाटक तथा खेल-तमाशे देखने के लिये इनको काफ़ी उत्तेजना दें। थोड़े दिनों में ये लोग तेज-हीन, निरुद्यमी और स्त्रियों-जैसे हो जायँगे, और फिर कभी आपके ख़िलाफ़ बलवा न कर सकेंगे।"

लिडिया-वासी कुछ तो पहले से ही विलास-प्रिय थे, और फिर विजयी ईरानियों ने जब उपर्युक्त नीति का अवलंबन किया, तो परिणाम यह हुआ कि इतिहास में लिडिया का नामोनिशान भी नहीं रहा !

लिडिया-वासी सुख-शांति पाकर अपने को भूल गए। शांति का समय अपनी जाति में सुख और एकता बढ़ाने, अधिक बलवान् होने और धर्मात्मा बनने के लिये है, विलास-प्रियता के लिये नहीं, यह भान लिडिया-वासियों को नहीं रहा, और वे आलसी तथा कायर बनकर नष्ट हो गए।

इसी तरह और भी अनेक प्रजाओं को अपना भान नहीं रहा, पर विजेताओं ने इसी नीति को चलाकर इन्हें आलसी, कायर और डरपोक बना दिया।

---

(१३५)

प्रसिद्धि-तिरस्कार

स्वामी रामकृष्ण परमहंस को यह पसंद न था कि लोगों में उनकी प्रसिद्धि हो। इसी से आप हर आदमी के सामने अपने जीवन का हाल नहीं कहते थे। जिस पर अधिक प्रेम होता, जिसे अच्छी तरह पहचान लेते, उसी के आगे आप अपने आध्यात्मिक अनुभव कहते थे।

बाबू केशवचंद्र सेन स्वामीजी के समागम में आने के बाद उनके सद्‌गुणों पर बहुत मुग्ध हो गए थे। एक बार आपने अपना सद्भाव प्रकट करने के लिये सामयिक पत्रों में स्वामीजी के संबंध का हाल लिखा। जब स्वामीजी ने यह समाचार सुना, तब आप बहुत नाराज हुए, और केशवदेव को कितने ही समय तक अपने पास आने से मना कर दिया।

एक दिन आप आधी रात के समय उठकर घूमने लगे, और थू-थू करके कहने लगे—"लोग मुझे मान देते हैं, मा! लोग मुझे मान देते हैं।"

थू-थू का सारांश यह है कि लोक-प्रतिष्ठा पर आप सदा थूकते थे। मान, यश, प्रसिद्धि की बात सुनकर आप विरक्त होते थे। असल में आप नाम-रूप के पार पहुँच गए थे, फिर आपको नाम की परवा कैसे हो सकती थी? आप उपदेश देते थे—"फूल को खिलने दो, मधु-मक्खियाँ उसके पास अपने आप आ बैठेंगी। चरित्र बनाओ, सुंदर चरित्र देखकर जगत् अपने आप मुग्ध हो जायगा।"

---

(१३६)

सर विलियम जोंस का भारत की वस्तुओं के प्रति प्रेम

सर विलियम जोंस ईस्ट-इंडिया-कंपनी के समय में एक बड़े ओहदेदार थे। संस्कृत-भाषा के आप महा विद्वान् और

प्रेमी थे। कालिदास के शाकुंतल-नाटक का अँगरेज़ी भाषांतर सबसे पहले आप ही ने किया था। इसी भाषांतर ने कवि-कुल-गुरु कालिदास की प्रतिभा का परिचय पाश्चात्य देश के विद्वानों को कराया।

इस महा विद्वान् को अपने देश से कितना प्रेम था, यह बात नीचे की घटना से जानी जायगी।

पहलेपहल जब इन्होंने अशोक-वृक्ष देखा, तो इनको बहुत आनंद हुआ। संस्कृत-काव्यों में अशोक के कितने अधिक वर्णन आए हैं, इसका वह विचार करने लगे। अंत में इस वृक्ष पर इनका इतना प्रेम बढ़ा कि इन्होंने इसका नाम ही 'जोंस अशोक' रख दिया। तब से आज तक वनस्पति-शास्त्र में यह वृक्ष इसी नाम से प्रसिद्ध है।

---

(१३०)

शाहशुजा की कन्या का ईश्वर पर पूर्ण विश्वास

शाहशुजा केरमान-देश का प्रसिद्ध पंडित, ज्ञानी और विरागी था। अपनी परम रूपवती और गुणवती कन्या के लिये यह अच्छे वर की तलाश में था। एक दिन इसने देखा कि एक युवक भक्ति-पूर्वक ईश्वर की उपासना कर रहा है। बातचीत करने से मालूम हुआ कि युवक अच्छे स्वभाव का और होशियार है।

शाहशुजा ने फ़क़ीर-वेशधारी उस नौजवान से पूछा—"नौजवान ! तेरी शादी हो गई या नहीं ?" फ़क़ीर ने कहा—"नहीं।" शाहशुजा ने पूछा—"तेरी व्याह करने की इच्छा है ?" फ़क़ीर बोला—"मुझ-जैसे ग़रीब को कौन कन्या देगा ? मेरे पास सिर्फ़ तीन 'दरहम' (उस देश का सिक्का) हैं।" शाहशुजा ने कहा—"मैं अपनी कन्या तुझे दूँगा। तू इन दरहमों में से एक की रोटी, एक की शक्कर और एक का लोबान ले आना। मैं तेरा विवाह कर दूँगा।"

इस प्रकार संबंध स्थिर हो गया। इसके कुछ दिनों पहले केरमान के ऐश्वर्यशाली बादशाह ने इस कन्या को अपने लिये माँगा था। पर बादशाह को पसंद न करके शाहशुजा ने एक ग़रीब फ़क़ीर के साथ, उसकी ईश्वर-भक्ति और उपासना देखकर, अपनी प्यारी पुत्री का विवाह कर दिया।

विवाह के बाद लड़की ससुराल गई। वहाँ जाकर उसने देखा, पानी के कूजे पर एक सूखी रोटी रक्खी है। लड़की ने पूछा—"यह रोटी किसलिये रक्खी है ?" उसके स्वामी ने जवाब दिया—"आज रात को खाने के लिये कल रख दी थी।"

इतना सुनते ही लड़की को बड़ा दुःख हुआ, और वह अपने पीहर जाने लगी। फ़क़ीर ने कहा—"मैं तो पहले ही जानता था कि शाहशुजा की छोकरी मेरे दुःख और दरिद्र में भाग न ले सकेगी।"

युवती ने कहा—"प्रियतम ! आपकी गरीबी देखकर मैं दुखी हुई हूँ, और इसीलिये पीहर चली जाना चाहती हूँ, असल में यह बात नहीं है। बल्कि ईश्वर पर आधार और विश्वास रखने में आप कितने दुर्बल हैं, यह जानकर मुझे बहुत खेद होता है, और इसीलिये मैं शोकातुर हृदय से बाबाजान के पास जाने को तैयार हुई हूँ। आप कल ही से आज का विचार करके रोटी संचित रखते हैं, यह देखकर मुझे बड़ा अफ़सोस होता है। हाय ! मुझे अपने बाबाजी का बर्ताव देखकर आश्चर्य होता है। उन्होंने बीस वर्ष तक मुझे लाड़ से पाला-पोसा है। वह कहते थे, मेरा ऐसे पुरुष के साथ विवाह करूँगा, जिसकी वैराग्य और ईश्वर पर पूर्ण आस्था होगी। पर मुझे आज मालूम हुआ कि उन्होंने मेरा विवाह ऐसे व्यक्ति के साथ किया है, जिसे अपनी गुज़र के लिये ईश्वर पर भरोसा नहीं।"

ये बातें सुनते ही फ़क़ीर ने गद्गद कंठ से कहा—"इस पाप का प्रायश्चित्त कैसे हो सकता है प्रिये !"

सती युवती ने कहा—"इस घर में या तो यह सूखी रोटी ही रह सकेगी, या मैं ही रह सकूँगी।"

यह सुनकर फ़क़ीर ने यह रोटी बाहर फेंक दी, और उस दिन से कल के खाने के लिये रोटी रखना छोड़ दिया।

देखिए, संसार में रहकर भी कितना ऊँचा वैराग्य है !

---

(१३८)

स्वदेश के लिये मज़दूर-माता का प्राण-त्याग

रूस और जापान के युद्ध के समय जब जापान की सेना कोरिया में जा रही थी, तब एक जापानी मज़दूर ने सेना के साथ कोरिया जाने की प्रार्थना की। जापान का क़ायदा ऐसा था कि जो युवक अपने ग़रीब और वृद्ध माता-पिता के भरण-पोषण का साधन और इकलौता पुत्र हो, उसे यथा-संभव युद्ध में न भेजा जाय। इस मज़दूर के संबंध में भी तलाश करने से सेना के कप्तान को पता लगा कि इसके पास पैसा नहीं है, और न ज़मीन का एक टुकड़ा ही है! यह रोज़ कमाता, और रोज़ खाता है। और, इसकी वृद्ध माता के लिये इसके सिवा गुज़र का दूसरा कोई साधन नहीं। आज अगर यह युद्ध में चला जाय, तो अन्न और दाँतों का वैर हो जाय। ऐसी स्थिति देखकर कप्तान ने उसे अपनी पल्टन में दाख़िल नहीं किया। इधर पुत्र की इच्छा देखकर माता ने ही उसे युद्ध में जाने को भेजा था, और कहा था—"बेटा! देश की ख़ातिर पवित्र रण-क्षेत्र में तेरे प्राण चले जायँगे, तो घर रहकर भूख के मारे मेरे प्राण भी चले जायँगे; पर इसमें हानि क्या है?" पुत्र जब उदास होकर लौटने लगा, तब माता ने सारा हाल पूछा, और कहा—"भाई! मेरे इस तुच्छ जीवन के लिये तू अपने देश और राजा की ख़ातिर प्राण नहीं दे

सकेगा, यह बहुत ही धिक्कारने योग्य बात है। मैं तेरे कर्तव्य और यश के मार्ग में कंटक नहीं बनना चाहती। तू मेरा आशीर्वाद लेकर युद्ध क्षेत्र में अपना कर्तव्य पालन करने के लिये जा।" इतना कहकर उस वृद्ध स्त्री ने अपने पेट में छुरा भोंककर प्राण त्याग दिए। पुत्र भी माता की अंत्येष्टि क्रिया करके युद्ध में गया।

जिस देश के मजदूरों में स्वदेश के लिये इतना दृढ़ प्रेम है, वह देश धन्य है!

---

(१३६)

दुराचारी के मन में प्राण जाने की शंका

डियोनिसस अपने परिश्रम, लगन और बुद्धि के प्रताप से एक साधारण कारकुन से सिराकुज का राजा हो गया था। बाहर के शत्रु कार्थेजियनों को हराकर इसने अपने राज्य का विस्तार किया था, और इसकी शोभा बढ़ाई थी। सिराकुज के सैनिक इसको बहुत चाहते थे; परंतु नगर-निवासी इसके राज्य के बहुत खिलाफ थे। न्याय के बर्ताव से प्रजा को संतुष्ट करना राजा का धर्म है; परंतु डियोनिसस इसका यथार्थ पालन नहीं करता था, और हमेशा मन में डरता था कि कदाचित् मुझे कोई मार डालेगा, और मेरा राज्य छीन लेने की कोशिश करेगा।

कहा जाता है, उसने पहाड़ के अंदर राजद्रोहियों के लिये एक क़ैदख़ाना बनवाया था, और उसके नीचे एक ऐसी सुरंग खुदाई थी कि क़ैदी जो बातें करें, वे सहज ही में चुपचाप सुनी जा सकें।

डेमोकिलस नाम के एक दरबारी ने एक दिन इस राजा के वैभव की प्रशंसा की, जिससे खुश होकर इसने डेमोकिलस को एक दिन पूरी सत्ता के साथ राज्य भोगने का अधिकार दिया। परंतु साथ ही राजा ने अपनी असली हालत समझाने के लिये एक धारवाली तलवार बारीक तंतु से बाँधकर मित्र डेमोकिलस के मस्तक पर लटका दी। इस संकेत से राजा ने मित्र को सूचित किया कि इतने वैभव में भी मेरे मस्तक में प्राण जाने का कितना भय समाया हुआ है!

डियोनिसस ने प्राण जाने के भय से अपना शयनागार मज़बूत क़िला-सा बनवा लिया था, और रात्रि के समय उसकी खाईं के ऊपर का पुल हटवाकर क़िले में सोता था। एक दिन इसके हज्जाम ने अभिमान में आकर कहा—"मैं प्रतिदिन राजा के गले पर उस्तरा फेरता हूँ।" डियोनिसस ने जब यह बात सुनी, तब उसने हज्जाम को प्राण-दंड दे दिया, और तब से अपनी पुत्री से हजामत बनवाने लगा। बाद को जब पुत्री पर भी संदेह हुआ, तब पुत्री से भी हजामत बनवाना छोड़ दिया।

दुरात्मा जनों को प्राण जाने का हमेशा भय बना रहता

है। परंतु जो राजा प्रजा पर प्रेम रखते हैं, और प्रजा के सुख में सुख और दुःख में दुख मानते हैं, वे सदा ऐसे भय से मुक्त रहते और शांति से सुख-शय्या पर सोते हैं।

---

(१५०)

आदर्श मित्रता

डियोनिसस सब पर संदेह रखनेवाला और प्राण-भय से हमेशा शंकित रहनेवाला राजा था। एक बार इसने डेमन नाम के एक ऊँचे घराने के युवक को मामूली अपराध के लिये प्राण-दंड की सजा दी। डेमन ने बिनती की—"मुझे एक वर्ष की मुहलत दीजिए, जिससे मैं ग्रीस जाकर अपनी माल-मिल्कियत का बंदोबस्त कर आऊँ। अवधि पूरी होने के बाद मैं तुरंत सिराकुंज लौट आऊँगा, और आपकी सजा भोगूँगा।" राजा डियोनिसस तिरस्कार-पूर्वक बोला—"यहाँ ऐसा कोई मनुष्य है, जो जामिन होकर कहे कि अगर डेमन मुद्दत के अंदर न आए, तो उसके बदले में फाँसी पर चढ़ूँगा?" यह सुनकर डेमन का मित्र पिथियस आगे आया, और ख़ुशी से उसने जामिन होना मंजूर किया। राजा को इस बात से बहुत आश्चर्य हुआ। यह ख़ुद किसी पर विश्वास नहीं रखता था, इसलिये इसकी समझ ही में नहीं आया कि ऐसी जोखिम की हालत में भी पिथियस का अपने मित्र पर ऐसा अटल विश्वास किस तरह है? अस्तु। डेमन

को ज़मानत पर छोड़ दिया गया, पर उसके बदले पिथियस को नज़र-क़ैद कर दिया गया। धीरे-धीरे एक वर्ष पूरा हो गया ; पर डेमन नहीं लौटा। तब उसका मित्र पिथियस मृत्यु के लिये तैयार होकर फाँसी की राह देखने और कहने लगा—"ऐसे मित्र के लिये मरने में मुझे ज़रा भी दुःख नहीं होता। मेरा दोस्त या तो मर गया होगा, या झंझा वात से उसकी नौका किनारे आने में देर लगी होगी।" पिथियस का विश्वास सही निकला। पिथियस को फाँसी पर चढ़ाया ही जानेवाला था, इतने में डमन वध-भूमि में आ पहुँचा। इन दोनो मित्रों का प्रेम देखकर डियोनिसस ने डेमन का प्राणांत-दंड माफ कर दिया, और दोनो मित्रों से प्रार्थना की—"आज से मुझे भी अपना मित्र समझो।"

परंतु असली बात तो यह है कि परस्पर जब गाढ़ा प्रेम, दृढ़ विश्वास और स्वार्थ-त्याग की वृत्ति होती है, तभी सच्ची मित्रता बँधती है।

पिथियस और डेमन की दोस्ती आज भी योरप में प्रख्यात है।

---

(१४१)

लॉर्ड स्टेअर का विवेक

एक दिन फ्रांस के राजा पंद्रहवें लुई से मिलने के लिये इँगलैंड के एलची लॉर्ड स्टेअर आनेवाले थे। इस बात की

खबर पाकर एक हजूरिया बोल उठा—"लॉर्ड स्टेअर विवेक में एक ही हैं।" राजा बोला—"इसकी परीक्षा अभी हो जायगी।" इतने में लॉर्ड स्टेअर आ गए। वह नियम-पूर्वक राजा को सलाम करके खड़े रहे। इसी समय राजा की हवा-खोरी के लिये गाड़ी आकर खड़ी हुई। राजा ने लॉर्ड स्टेअर से गाड़ी में बैठने को कहा। लॉर्ड स्टेअर तुरंत राजा को सलाम करके राजा के पहले ही गाड़ी में बैठ गए। यह देखकर राजा ने कहा—"मैंने आपके विषय में जो सुन रक्खा था, वह सही निकला। आपका विवेक सचमुच ऊँचे दर्जे का है। दूसरा आदमी होता, तो कहता—'हुजूर, आप पहले विराजो। मैं कैसे पहले बैठ जाऊँ?' ऐसी ही बातें विवेक बताने के लिये कहकर मेरा माथा चाट जाता, और ऐसा करते-करते कितना समय बरबाद होता।"

बड़ों की आज्ञा का पालन करना ही सच्चा विवेक है।

---

(१४२)

एक स्त्री द्वारा स्वदेशी वस्त्र का प्रचार

इतने वर्षों तक स्वदेश-प्रेमी अँगरेजों को प्रजा के समागम में रहने के बाद अब स्वदेशी कारीगरी पर दया उत्पन्न हुई है। सन् १८०१ में इँगलैंड में मिसेज चेपमेन नाम की एक धनाढ्य स्त्री रहती थी। उस समय पास के गाँवों के कारीगरों

का वनाया हुआ कपड़ा लोगों में बहुत कम विकता था। इससे चेपमेन को बहुत दुःख होता था, और इसीलिये इस दयालु नारी ने अपने घर में विदेशी वस्त्र का उपयोग वंद कर दिया। इतना ही नहीं, प्रत्युत एक बार इसने ऐसा किया कि भोजन और नाच का प्रसंग रचकर विलायत के कई खानदानी स्त्री-पुरुषों को निमंत्रण भेजा। इस निमंत्रण-पत्रिका में लिखा था—"मेरे द्वार पर निमंत्रण का कार्ड वताने के वदले इस गाँव के किसी एक बुनकर के हाथ की रसीद दिखानी पड़ेगी, जिसमें ऐसा लिखा होगा कि 'इस गृहस्थ या सन्नारी द्वारा मेरे यहाँ से कम-से-कम दस गज़ कपड़ा ख़रीदा गया है।' और, इस देशी कपड़े की पोशाक पहनकर ही इस दिन के भोजन और नाच में शामिल होना पड़ेगा।"

निमंत्रण पाकर स्वदेशी वस्तुओं के प्रेमी और ऐक्य भाव से अच्छा काम करनेवाले अँगरेज़ों तथा सन्नारियों ने बहुत आनंद प्रकट किया, और चेपमेन के उद्देश की भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे लोग उत्साह-पूर्वक निमंत्रण को सम्मान देकर स्वदेशी पोशाक में आए, और भोजन तथा नाच में शामिल हुए। इस उपाय से थोड़े ही समय में बहुत सरलता से उस गाँव के ग़रीव बुनकरों का दुःख दूर हो गया।

"यथा स्त्रीतनयौ पोष्यौ स्वदेशे शिल्पिनस्तथा" जिस प्रकार स्त्री और वच्चों का पोषण करना योग्य है, उसी प्रकार स्वदेश के कारीगर भी पोषण पाने के योग्य हैं। यह वात,

अफ़सोस है, हम लोग ध्यान में नहीं रखते। चेपमेन की तरह यदि हमारे देश में कोई सन्नारी निमंत्रण भेजे, तो उसकी कितनी निंदा और हँसी हो! कुछ लोग तो ऐसे निमंत्रण से अपना अपमान समझकर उसके घर ही न जायँ। परंतु स्वदेश-प्रेमी अँगरेज़ों ने इस कार्य को 'स्त्रियों द्वारा हुए महान् कार्यों' की याददाश्त में दाखिल किया है।

---

(१४३)

मुज़फ़्फ़र शाह की पितृभक्ति

गुजरात का बादशाह मुज़फ्फ़र शाह बड़ा धर्म-परायण, होशियार और ज्ञानी पुरुष था। कहा जाता है, एक रात को उसके पिता सुलतान महमूद पवित्र और विद्वान् मनुष्यों के साथ बैठे थे, और प्राचीन समय की क़यामत तथा कथाओं पर बातचीत हो रही थी। बात के प्रसंग में एक होशियार और समझदार मनुष्य ने कहा—"क़यामत के दिन सूर्य भाले-जैसा नीचे उतरेगा, और पापी मनुष्यों को छेद डालेगा। इस दिन जिस मनुष्य ने पवित्र क़ुरान कंठस्थ कर रक्खी होगी, उसको उसकी सात पीढ़ी के साथ परवरदिगार की मेहरबानी की छत्रच्छाया मिलेगी, और उसके आशीर्वाद से सूर्य का ताप उस पर कुछ भी असर न कर सकेगा।"

सुलतान ने एक लंबी श्वास खींचते हुए कहा—"मेरे

पुत्रों में से कोई भी ऐसा नहीं, जिसके कारण मैं परमेश्वर की इस दया की आशा रख सकूँ।" सुलतान का पुत्र मुज़फ़्फ़र उस जलसे में हाज़िर था। उस पर पिता के यह शब्द सुनकर बड़ा गहरा असर पड़ा। वह कुछ दिनों बाद आज्ञा लेकर अपनी जागीर बड़ौदा को गया, और वहाँ केवल क़ुरान बाँचने तथा उसका मनन करने में लग गया। ज्यादा बाँचने से उसकी आँख भारी हो गई। उसके दरबारियों ने कहा—"यह ख़राबी जगने और पवित्र क़ुरान के पढ़ने में अधिक समय लगाने से हुई है। हमारे धर्म-शास्त्रों में कहा है - 'परवरदिगार अपने नौकरों से असीम बोझा नहीं उठवाता,' इसलिये यदि आप जागरण थोड़ा करेंगे, और क़ुरान बाँचने में थोड़ा समय लगावेंगे, तो आँख की लाली कम पड़ जायगी।" सुलतान ने कहा—"यदि सचमुच मेरी आँख रात के जागरण और क़ुरान के बाँचने से लाल हुई है, तो भले ही हो। यह ललाई मुझे इस दुनिया और दूसरी दुनिया में मदद देगी।" आख़िर बहुत अधिक प्रयास से मुज़फ़्फ़र शाह ने एक वर्ष और थोड़े मास में सारा क़ुरान ज़बानी याद कर लिया। इसके बाद उसने पिताजी के पास अहमदाबाद जाकर कहा—"आपकी मर्ज़ी हो, तो मैं सारी क़ुरान ज़बानी सुना दूँ ?" पुत्र की यह बात सुनकर महमूद बहुत प्रसन्न हुए, और सारा क़ुरान कंठस्थ करने का पुत्र से कारण पूछा। पुत्र ने

उस दिन की मजलिस का स्मरण कराते हुए कहा—"उस दिन आपने यह कहा था कि 'मेरे पुत्रों में से कोई भी ऐसा नहीं, जिसके कारण मैं परमेश्वर से दया की आशा रख सकूँ।' इस बात से मैंने क़ुरान को ज़बानी याद करने का निश्चय किया, और इस काम में जुट गया। इससे आपकी आशा सफल हुई है।"

सुलतान ने पुत्र को छाती से लगा लिया, उसका मस्तक सूँघा और उसकी बहुत तारीफ़ की।

---

(१४४)

मुज़फ्फ़र शाह का मद्य-तिरस्कार

गुजरात के सुलतान मुज़फ्फ़र शाह के पास एक घोड़ा था। वह दौड़ने और अच्छी चाल चलने में मशहूर था। सुलतान ने उस घोड़े को ख़ास अपनी सवारी के लिये रक्खा था। एक दिन घोड़े का पेट दुखने लगा। कई दवाएँ दी गईं, लेकिन कुछ भी असर न हुआ। यह देखकर किसी होशियार आदमी ने कहा—"अगर इसके गले में अच्छी शराब डाली जाय, तो फ़ौरन् आराम हो जाय।" ऐसा ही किया गया, और घोड़े का दर्द तुरंत मिट गया। अश्वपाल ने सुलतान को ख़बर की—"आज अमुक घोड़े के पेट में दर्द होता था। बहुत दवाएँ दीं, पर नहीं मिटा। आख़िर असली शराब पिलाने से वह फ़ौरन् अच्छा हो गया।"

सुलतान यह बात सुनकर बहुत शोकातुर हुआ। उसने अपनी उँगली दाँतों-तले दबाई। और, उसके बाद से किसी दिन भी उस घोड़े पर सवारी नहीं की।

इस सुलतान के लिये कहा जाता है कि जब यह शाहज़ादा था, तब और गद्दीनशीनी के बाद कभी इसने शराब नहीं पी, और बड़े संयम से अपनी ज़िंदगी बिताई।

---

(१४५)

मुज़फ़्फ़र शाह का प्रजा-प्रेम

एक समय मुज़फ्फ़र शाह के ज़माने में गुजरात में वर्षा नहीं हुई। लोग हाहाकार करने लगे। सुलतान मुज़फ्फ़र ने परमेश्वर की प्रार्थना करने के लिये अपना हाथ ऊँचा करके कहा,—"ऐ परवरदिगार ! यदि तू मेरे पापों के लिये गुजरात के लोगों को इस तरह सताता हो, तब तो मुझे ख़ुद इस फ़ानी दुनिया से उठा ले, और लोगों को दुष्काल के पंजे से बचा, क्योंकि ग़रीब मुज़फ्फ़र ग़रीब लोगों को भूखे मरते नहीं देख सकता।" मुज़फ्फ़र बहुत पवित्र और धार्मिक पुरुष था, इसलिये परमेश्वर ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की, और ख़ूब वर्षा हुई। पर सुलतान थोड़े दिनों बाद इस असार संसार से चल बसा।

---

(१४६)

एक अँगरेज़ स्त्री का पातिव्रत और वीरता

मध्य प्रदेश के विलासपुर-नगर में बेल साहब और उनकी स्त्री बाघ का शिकार करने निकले। एक बाघ के बेल साहब ने गोली मारी। गोली खाली गई, और बाघ इन पर टूट पड़ा। यह देखकर बेल साहब की स्त्री ने उसे एक गोली से घायल किया। गोली लगते ही बाघ भाग गया। बेल साहब को बहुत क्रोध और जोश आया। वह जोश में आकर, साथ के नौकरों के बहुत मना करने पर भी, उस छेड़े हुए बाघ के पीछे गए। साहब थोड़ी ही दूर गए थे कि बाघ ने एक झाड़ी से निकलकर इनके ऊपर छलाँग मारी, और इन्हें ज़मीन पर गिराकर, इनका पेट चीरकर अँतड़ियाँ बाहर निकाल दीं। इसके बाद बाघ उनके कूल्हे को चीरकर, वहाँ मुँह लगाकर खून पीने लगा। बाघ तथा शिकारियों ने यह दृश्य होते समय चीख नहीं मारी, इसलिये मिसेज़ बेल और उनके साथी मित्रों को दूर से इस घटना की ज़रा भी खबर नहीं हुई। बेल साहब ने अपने साथी मित्रों की सलाह नहीं मानी थी, इसलिये वे लोग वहाँ से चले गए थे। पर इनकी पति-परायण स्त्री पति की खोज में पति के पीछे-पीछे गई थी। धीरे-धीरे जब यह उस स्थान पर पहुँची, तो इसने वह रोमांचकारी और हृदयविदारक दृश्य देखा। मिसेज़ बेल ने बहुत ही धीरज से काम लिया। उसने बाघ

की तरफ़ ठीक निशाना ताककर गोली छोड़ी, पर वार ख़ाली गया। अब बंदूक़ में दूसरी गोली न थी। बाघ ने अब तक उसके स्वामी को छोड़ा न था, और वह पहले की तरह ही रक्त पी रहा था। मिसेज़ वेल ने अब कोई उपाय न देखकर खाली बंदूक़ तथा लातों से बाघ को ज़ोर से मारना शुरू किया। मार ऐसी सख्त पड़ी कि बाघ अंत में हारकर भाग गया। उस समय पतिव्रता नारी मिसेज़ वेल ने यह किया कि पति की अँतड़ियाँ सँभालकर पेट में जमाईं, और पेट तथा दूसरे घावों पर पट्टी बाँध दी। इसके बाद उसने और भी हिम्मत का काम किया। जिस तरह माता बालक को उठाकर ले जाती है, उसी तरह उसने स्वामी को उठाकर १८ मील का लंबा सफर तय किया, और पास के एक स्टेशन पर पहुँचकर डॉक्टर को बुलाने को तार दिया। परंतु अफ़सोस है, इतनी कोशिशें करने पर भी उसके स्वामी के प्राण नहीं बचे।

धन्य है इस सती के प्रेम, साहस और शक्ति को, जिसने पति के लिये सब कुछ किया, और भारतीय नारियों के लिये वीरता का एक ख़ासा उदाहरण उपस्थित कर दिया !

(यह घटना जून, सन् १९१२ में हुई थी)